हिन्दी-साहित्य

का

सुगम इतिहास

(History of Hindi Literature in Out Lines)

श्री व्यथित हृदय

नी र ज प्र का श न

आसफ अली रोड – नई दिल्ली

मूल्य : १.५०

नीरज प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित
एवं राजेन्द्रा प्रिंटर्स, रामनगर, नई दिल्ली मे मुद्रित ।

हैं। **आधुनिक काल** में विभिन्न भावों और प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। जैसे :—राष्ट्रीय, छायावादी, प्रयोगवादी, आदि।

आधुनिक काल को गद्यकाल इस लिए कहते हैं कि इस काल में गद्य का विकास साहित्य के विभिन क्षेत्रों में, वैज्ञानिक ढंग से हुआ है। यद्यपि गद्य की नींव बहुत पहले पड़ चुकी थी, पर उसकी वास्तविक उन्नति आधुनिक काल में ही हुई है।

आदिकाल

(संवत् १०५०-१३७५) 1050 - 1375

भाषा और विषय की दृष्टि से आदिकाल के साहित्य को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :—अपभ्रंश साहित्य और डिंगल साहित्य।

अपभ्रंश साहित्य वह साहित्य है, जिसकी रचना अपभ्रंश में हुई है। हिन्दी पूर्व देश में अपभ्रंश भाषा का ही अधिक प्रचार था। पर यह बोल-चाल की भाषा न होकर केवल साहित्य की भाषा थी।

अपभ्रंश साहित्य तीन प्रकार का है:—जैन अपभ्रंश साहित्य, बौद्ध अपभ्रंश साहित्य, और नाथ अपभ्रंश साहित्य।

जैन अपभ्रंश साहित्य में उपदेशात्मक और रहस्यात्मक भावों का विकास हुआ है। योगीन्द्र, रामसिंह मुनि, सुप्रभाचार्य, जिनदत्त सूरि, महेश्वर सूरि, स्वयंभू, पुष्पदंत, और धनपाल आदि ने जैन अपभ्रंश साहित्य के सृजन में सुकीर्ति प्राप्त की है।

बौद्ध अपभ्रंश साहित्य अश्लील भावनाओं से युक्त है। बौद्ध अपभ्रंश साहित्य में कहीं-कहीं निर्गुण और उपदेश सम्बन्धी भावों के भी चित्र मिलते हैं। सरहदपाद, शबरपा, और लुइया आदि बौद्ध अपभ्रंश साहित्य के मुख्य रचनाकार हैं।

नाथ अपभ्रंश साहित्य में आध्यात्मिक भावनाओं का विकास हुआ है। परम तत्त्व और आंतरिक शुचिता के चित्र नाथ अपभ्रंश साहित्य में अधिक मिलते हैं। आदिनाथ, गोरखनाथ आदि की रचनाएँ नाथ साहित्य का प्राण हैं।

शारंगधर, सोमप्रभ सूरि, मेरुतुंग, और विद्यापति आदि अपभ्रंश काल के ही कवि हैं। अपभ्रंश काल में ही विद्यापति ने 'कीर्तिलता',

और 'कीर्ति पताका' को रचना की थी, जिनमें प्रेम और शृंगारिक भावों का विकास सुरम्यता के साथ हुआ है।

डिंगल साहित्य वह साहित्य है, जिसकी रचना डिंगल (राजस्थानी) भाषा में हुई है। दूसरे शब्दों में इसी साहित्य को हम हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल का साहित्य कहते हैं। यही वह साहित्य है, जहाँ से हिन्दी साहित्य का इतिहास अपने विकास को यात्रा भी आरम्भ करता है।

वीरगाथा काल के साहित्य पर दृष्टि डालने से पूर्व हमें एक बार तत्कालीन समाज का चित्र भी देख लेना चाहिए।

राजनैतिक स्थिति—वीरगाथा काल का साहित्य अपने युग का पूर्ण प्रतिबिंब है। जिस समय इस साहित्य की रचना हुई थी, उस समय देश की जनता के हृदय में वीरता के भाव उमड़ पड़े थे। सारा देश त्याग, और देश-प्रेम की वेदिका पर बैठ कर वीरता के गीत गा रहा था।

यह वही समय था, जब मुहम्मद ग़ज़नवी और मुहम्मद गोरी आदि के देश पर आक्रमण हो रहे थे। देश में कोई ऐसी प्रबल शक्ति न थी, जो विदेशियों का सामना कर सकती। देश कई भागों में बँटा हुआ था। प्रत्येक भाग में पृथक्-पृथक् राजाओं का राज्य था, जो विलासिता को ही जीवन का धर्म मानते थे।

फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा, कि विदेशियों के आक्रमण पर देश की रगों में वीरता की लहरें दौड़ पड़ीं, और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए, देश की जनता ने वीरतापूर्ण अपूर्व बलिदान किया।

उस समय देश में स्वयंवरों की भी प्रथा थी, जिनमें लोगों को वीरतापूर्ण कौशल प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त हुआ करता था।

वीरगाथा काल का वीरतापूर्ण साहित्य इन्हीं वीरताओं और शूरताओं का प्रतिबिंब है।

समाज और धर्म की स्थिति—एक ओर जहाँ राजनैतिक स्थिति अस्त-व्यस्त थी; वहाँ दूसरी ओर समाज भी बहुत ही दुर्बल और अशक्त था। समाज जातियों और उपजातियों में बँट कर धीरे-धीरे पतन की ओर खिसकता जा रहा था। ऊँच-नीच का भेद घृणित रूप में चारों ओर फैला हुआ था। वर्णव्यवस्था ने ऐसी ऊँची-ऊँची दीवालें खड़ी कर दी थीं, कि लोग आपस में एक-दूसरे से बहुत दूर हो गए थे।

धर्म के नाम पर चारों ओर पाखंड फैला हुआ था। ईश्वर और धर्म को केवल कुछ ही मनुष्यों तक सीमित कर दिया गया था। अन्ध-विश्वास की जड़ें बड़ी गहराई तक घुसी हुई थीं। तंत्र-मंत्र और सिद्धि के नाम पर अपढ़ और अज्ञानियों के हृदयों पर आतंक-सा छाया हुआ था। मदिरा और मांस का प्रचलन ज़ोरों पर था। जादू-टोने में भी लोगों की बड़ी आस्था थी।

ग़रीबी और बेकारी का राज्य था। धन सिमिट कर केवल कुछ मनुष्यों के पास एकत्र हो गया था। मन्दिरों में असंख्य धन था, मंदिरों की मूर्तियों के भोग में प्रतिदिन बुरी तरह धन खर्च किया जाता था, पर जनता की भूख और गरीबी की ओर किसी का भी ध्यान न जाता था।

वीरगाथा काल के साहित्य के रूप—वीरगाथा काल का साहित्य दो रूपों में मिलता है:—

(१) प्रबन्ध काव्य के रूप में, और (२) वीर-गीतों के रूप में। प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखे गए ग्रन्थ 'रासो' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'खुमान रासो' और 'पृथ्वीराज रासो'—दोनों वीरगाथा काल के अन्य-तम प्रबंध काव्य हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में आदि से लेकर अन्त तक वीरता मूर्तिमान दिखाई पड़ती है।

वीर-गीतों के रूप में 'वीसल देव रासो' और 'आल्हा खण्ड' आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रमुख कवि—

चन्दरबरदाई वीरगाथा काल का सर्वश्रेष्ठ कवि है। 'पृथ्वीराज रासो' चन्दरबरदाई की अन्यतम कृति है। यह एक प्रबंध काव्य है। इसमें आदि से लेकर अन्त तक पृथ्वीराज की वीरताओं के साहसपूर्ण चित्र अंकित किए गए हैं।

'पृथ्वीराज रासो' में मुख्य रूप से वीर रस की अभिव्यंजना हुई है, पर इसमें दूसरे रसों की भी योजना मिलती है।

इसमें अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा, उपमा, भ्रान्तिमान, और उदाहरण आदि अलंकारों के चित्र स्थान-स्थान पर देखने को मिलते हैं।

विद्वानों के मतानुसार इसकी रचना का काल १२२५ से १२४९ तक है।

दलपति विजय ने 'खुमान रासो' की रचना की है। 'खुमान रासो' में श्रीरामचन्द्र जी से लेकर चित्तौड़ के राणा खुमान तक के युद्धों का चित्र खींचा गया है।

जगनिक ने 'आल्हा खण्ड' की रचना करके अपूर्व कीर्ति प्राप्त की है। यह महोबे के राजा परमाल के दरबार में रहता था। इसने अपने 'आल्हा खण्ड' में आल्हा और ऊदल नामक दो सुप्रसिद्ध वीरों की वीरताओं का सुविस्तृत वर्णन किया है।

उत्तर भारत के गाँवों में 'आल्हा खण्ड' का अधिक प्रचार है।

इनके अतिरिक्त वीरगाथा काल में और कवियों ने भी भावों का गुम्फन किया है, जिनमें हेमचन्द्र, विद्याधर, नरपति नाल्ह, केदारभट्ट, और मधुकर कवि आदि मुख्य हैं।

स्फुट काव्य—

वीरगाथा काल में कुछ कवियों ने ऐसे काव्य की रचना की है, जिसे हम 'स्फुट काव्य' कह सकते हैं। स्फुट काव्य के रचयिताओं में अमीर खुसरो, विद्यापति, और मुल्ला दाऊद आदि प्रमुख हैं।

अमीर खुसरो *दिल्ली के राज्य से संबंधित थे*। इनका समय संवत् १३१० और १३८० के बीच में माना जाता है। इन्होंने पहेलियों, मुकरयों, और दो सखुनों की रचना की है।

खड़ी बोली का रूप सर्वप्रथम इन्हीं की रचनाओं में देखने को मिलता है। निम्नलिखित पंक्तियों में इनकी रचनाओं की एक झलक मिलती है :—

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस॥

विद्यापति तिरहुत के राजा शिवसिंह के दरबार में रहते थे। इनका समय संवत् १४६० के आस-पास माना जाता है। इन्होंने शृंगार और भक्ति संबंधी भावों का चित्रण किया है।

मुल्ला दाऊद का समय संवत् १३७५ के आस-पास माना जाता है। इन्होंने 'चन्दावत' की रचना की है, जिसमें प्रेमकथा को कविता के सूत्र में गूँथा गया है।

कहा जाता है, कि यह हिंदी का पहला प्रेम काव्य है; पर अभी तक यह अप्राप्य है।

संक्षिप्त परिचय

१. वीरगाथा काल की रचनाओं में आश्रयदाताओं के यशोगान, दान और उनके ऐश्वर्य संबंधी चित्र बहुत बढ़ा-चढ़ा कर खींचे गए हैं।
२. वीरगाथा काल की रचनाओं में वीरताओं, युद्धों, और सेना की चढ़ाइयों के सजीव चित्र हैं।

३. स्त्रियों के सौंदर्य और संयोग-वियोग के चित्र भी वीरगाथा काल के साहित्य में मिलते हैं।
४. वीरगाथा काल का सम्पूर्ण साहित्य कल्पना के ही अंचल में अग्रसर हुआ है।
५. वीरगाथा काल साहित्य का मुख्य रस 'वीर' है; पर उसमें वीर के साथ ही साथ शृंगार की भी संयोजना हुई है।
६. वीरगाथा काल के साहित्य की भाषा अपभ्रंश और डिंगल है।
७. वीरगाथा काल की रचनाओं का सृजन छप्पय, दोहा, और कवित्त आदि छन्दों में हुआ है।
८. वीरगाथा काल में प्रबंध और मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्यों की रचना की गई है।

पूर्व-मध्यकाल
(संवत् १३७५-१७००)

राजनैतिक स्थिति—वीरगाथा काल में देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जो उत्साह उमड़ उठा था, वह अब मन्द पड़ चुका था। मुसलमानों के शासन की नींव अब पड़ चुकी थी, और वह धीरे-धीरे सुदृढ़ पड़ती जा रही थी। बार-बार की पराजयों और आपसी फूट के कारण जनता में निराशा का वातावरण-सा छा गया था। जनता अपने को निराश्रित समझने लगी थी।

किसी ओर से अपने त्राण की आशा न देखकर जनता का ध्यान ईश्वर की ओर आकृष्ट हो उठा, और वह अपने आंतरिक स्वरों में भगवान को पुकारने लगी।

सामाजिक और धार्मिक स्थिति—समाज छिन्न-भिन्न था। जातियों और उपजातियों की संख्या में दिनों-दिन बढ़ती-सी होती जा रही थी। नीच-ऊँच का भेद पंख पसार कर फैला हुआ था। कलह, ईर्षा, और द्वेष की आग प्रज्वलित थी।

धर्म के नाम पर अनाचार फैला हुआ था। हिंदू धर्म के वास्तविक स्वरूप का कहीं पता तक न था। इस्लाम का प्रचार दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। रोटी, और भय से प्रभावित होकर लोग बड़ी-बड़ी संख्याओं में इस्लाम को ग्रहण कर रहे थे।

ग़रीबी का अखण्ड राज्य था। एक ओर लड़ाई, दूसरी ओर लूट-खसोट। जनता पूर्ण रूप से कंगाल हो चुकी थी। खेती, व्यापार और उद्योग-धंधे आदि जो धन-वृद्धि के साधन हैं, सीमित हो गए थे।

भक्ति-भावना का स्रोत—निराश और पीड़ित जनता ईश्वर की ओर आकृष्ट हो उठी। समाज में भक्ति भावना का स्रोत छलछला

उठा। एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक लोग अपने-अपने स्वरों में ईश्वर के गुणों का गान करने लगे। ज्यों-ज्यों जनता भक्ति के मार्ग पर अग्रसर होने लगी, त्यों-त्यों साहित्य पर भी उसका प्रभाव पड़ने लगा। भक्तिकाल के संपूर्ण कवि जनता की भक्ति-भावनाओं के ही प्रतीक हैं।

निराश और पीड़ित जनता के हृदय से भक्ति-भावनाओं का जो स्रोत फूटा, उसे हम दो रूपों में पाते हैं—(१) निर्गुणवाद के रूप में, और (२) सगुणवाद के रूप में।

निर्गुणवादी भावना में एकेश्वरवाद की प्रधानता है। हिंदुओं के उपनिषद् और मुसलमानों की एकेश्वरवाद संबंधी भावनाओं के सम्मिलन से इसके स्वरूप का निर्माण हुआ है।

निर्गुणवादी भक्ति-भावना भी दो रूपों में विभाजित है। उसका एक रूप तो वह है, जिसमें ज्ञान की प्रधानता है। इसे लोग साहित्य के अंतर्गत भक्तिकाल की **ज्ञानमार्गी शाखा** कहते हैं। कबीर इस शाखा के उन्नायक हैं।

दूसरे रूप में प्रेम संबंधी भावों का विकास हुआ है। भक्ति-भावना का यह दूसरा स्वरूप विशुद्ध रूप से सूफियों से प्रभावित है। साहित्य के अंतर्गत इसे **प्रेममार्गी शाखा** के नाम से अभिहित करते हैं। मलिक मुहम्मद जायसी इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं।

सगुणवादी भावनाओं में अवतारवाद को प्रधानता दी गई है। ईश्वर के रूपों, गुणों, और शक्तियों की महिमा का गान करके, उनके ध्यान को अपने दैन्य और दुःख की ओर आकर्षित किया है। यह भावना विशुद्ध रूप से भारतीय है। यही कारण है, कि इसका सबसे अधिक विकास भी हुआ है।

निर्गुणवादी भावना की तरह सगुणवादी भावनाओं का भी विकास दो रूपों में हुआ है—(१) राम-भक्ति भावना के रूप में, और (२) कृष्ण-भक्ति भावना के रूप में।

राम-भक्ति भावना के रूप में श्री रामचन्द्र जी के प्रति भक्ति अर्पित की गई है। **श्री रामानुजाचार्य** राम-भक्ति भावना के प्रेरक हैं। *हिन्दी साहित्य में जिन कवियों ने* राम-भक्ति भावना को काव्य के सूत्र में गूँथा है, उन्हें **राम-भक्ति शाखा** के कवि कहते हैं।

श्री कृष्ण-भक्ति भावना के रूप में श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम और श्रद्धा प्रगट की गई है। श्रीवल्लभाचार्य जी के द्वारा श्रीकृष्ण-भक्ति पल्लवित और पुष्पित हुई है। जिन कवियों ने श्रीकृष्ण-भक्ति में विभोर होकर रचनाएँ की हैं, उन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहास में श्रीकृष्ण-भक्ति शाखा के कवि कहते हैं।

भक्ति-भावनाओं के आधार पर लिखी गई रचनाओं के इतिहास को ठीक-ठीक समझने के लिए निम्नांकित चित्र से भी सहायता ली जा सकती है—
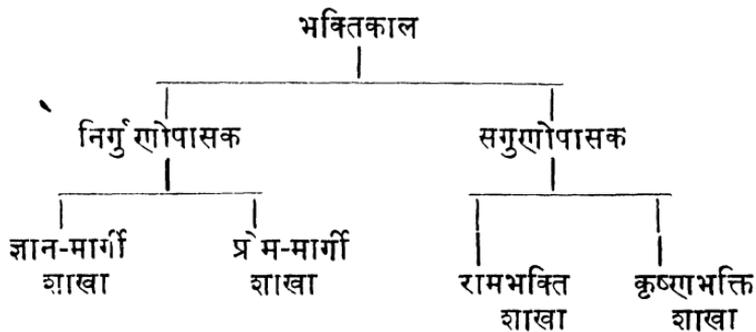
ज्ञान-मार्गी शाखा

ज्ञान-मार्गी शाखा में ज्ञान की प्रधानता है। वह ज्ञान एक अलौकिक ज्ञान है। उसमें हिन्दुओं के उपनिषद्, ब्रह्मवाद, सूफियों के रहस्य-वाद और मुसलमानों के एकेश्वरवाद की पूर्ण झलक मिलती है। वह ज्ञान मनुष्य और मनुष्य के बीच की खाई को ढहाता है, और लोगों को आपस में एक-दूसरे के निकट ले जाता है।

मन्दिर, मस्जिद, घंटा, अज़ान, छापा, माला, तिलक आदि किसी को भी वह स्वीकार नहीं करता। व्रत, पूजा, नमाज़ आदि सब पर वह चोट करता है।

वह केवल मनुष्यता की बात करता है। वह उन्हीं बातों का समर्थन करता है, अथवा उन्हीं रीतियों-नीतियों में विश्वास प्रगट करता है, जो मनुष्य के पारस्परिक अलगाव को दूर करती हैं।

वह मनुष्यों के आपस के अलगाव को समाप्त करने के लिए शास्त्र, पुराण और कुरान पर भी प्रहार करने में नहीं चूकता।

हिन्दी काव्य में **कबीर** ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्त्तक हैं। कबीर और उनके शिष्यों ने विशुद्ध ज्ञान के प्रचार में अथक परिश्रम किया। उन्हीं ने इसके लिए एक नया पंथ भी चलाया, जिसे कबीर पंथ कहते हैं।

प्रमुख कवि—

कबीर ज्ञान-मार्गी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। कहा जाता है, कि उनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था, जिसने उत्पन्न होने के बाद ही उन्हें काशी के 'लहरतारा' नामक तालाब के पास फेंक दिया।

नीरू नामक एक जुलाहा कबीर को उठा कर अपने घर ले गया और उनका पालन-पोषण किया।

बचपन में ही कबीर के हृदय में भक्ति अंकुरित हो उठी थी। उन्होंने रामानन्द को अपना गुरु मान कर उनसे राम नाम की दीक्षा ली थी।

पर कबीर के राम दशरथ के पुत्र 'राम' नहीं, बल्कि वे 'राम' हैं, जो संसार के सभी प्राणियों में समाविष्ट हैं।

कबीर ने एक नया पंथ चलाया था, जिसे **कबीर पंथ** कहते हैं। कबीर पंथ में—हिन्दू मुसलमान हर एक को स्थान है।

कबीर बड़े ज्ञानी थे। उन्होंने ऐसे ज्ञान का प्रचार किया है, जो मनुष्य को मनुष्य से मिलाता है। कबीर की रचनाओं में आदि से ले कर अंत तक ज्ञान की ही ज्योति मिलती है। उनकी कुछ ऐसी भी रचनाएँ हैं, जिनमें उन्होंने परमात्मा और आत्मा के मधुर संबंध चित्रित किए हैं। इस प्रकार की रचनाओं को लोग रहस्यवादी रचनाएँ कहते हैं।

संवत् १७५५ के आस-पास मगहर में कबीर की मृत्यु हुई। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्य धरमदास ने उनकी वाणि का संकलन किया, जो बीजक के नाम से प्रसिद्ध है।

रैदास, धर्मदास, गुरु नानक, दादू दयाल, सुन्दरदास, और मलूकदास आदि भी ज्ञानमार्गी शाखा के संत कवि हैं। इन संत कवियों ने कबीर के मार्ग पर चल करके ही ज्ञान, भक्ति और विशुद्ध प्रेम का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है।

संक्षिप्त परिचय

१. ज्ञान-मार्गी कवियों की रचनाओं में निर्गुणोपासना पर ही बल दिया गया है।
२. रूप का नहीं, केवल 'नाम' की ही प्रभुता का चित्रण किया गया है।
३. जाति-पाँति के बंधनों को अस्वीकार किया गया है।
४. 'गुरु' को 'गोविन्द' से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बताया गया है।
५. धर्म, और उपासना के बाहरी आडम्बरों का विरोध किया गया है।
६. सदाचार, अहिंसा, प्रेम और विशुद्ध भक्ति का समर्थन किया गया है।
७. परमात्मा से आत्मा के मधुर संबंध जोड़कर प्रेम, विरह और मिलन के भी चित्र अंकित किए गए हैं।

८. भाषा में कई भाषाओं के शब्दों का मेल है। इसलिए उसे लोग सधुक्कड़ी कहते हैं।
९. भाषा सौंदर्यहीन है, पर भावों का प्रकाशन स्वाभाविकता के साथ हुआ है।

प्रेम-मार्गी शाखा

प्रेम-मार्गी शाखा का गठन 'प्रेम' संबंधा भावनाओं से हुआ है। यह प्रेम विशुद्ध है। यद्यपि उस प्रेम को जन्म देने वाली कथाएँ और उनके पात्र लौकिक हैं, पर उनमें कौशल के साथ अलौकिकता की सृष्टि की गई है। दूसरे शब्दों में उसे 'ईश्वरीय प्रेम' का स्वरूप दिया गया है।

हिन्दी साहित्य में यह पहला अवसर है, जब कविता में 'प्रेम की पीर' का चित्र खींचा गया है।

'प्रेम-मार्गी शाखा' के विकास में जिन कवियों ने योग दिया है, वे सूफी मुसलमान थे। परिणामतः प्रेम-मार्गी शाखा 'सूफी मत' और सिद्धान्तों से अधिक प्रभावित है।

पर इस शाखा के कवियों ने अपने काव्य के लिए जो कथाएँ चुनी हैं, वे हिन्दुओं की गाथा-पुस्तकों से ली गई हैं। उनके पात्र हिन्दू हैं। काव्यों में हिन्दू देवी-देवताओं और रीतियों-नीतियों का भी वर्णन है।

ज्ञान-मार्गी शाखा के कवियों की तरह इस शाखा के कवि भी मानवतावादी थे। वे जाति-पाँति और ऊँच-नीच में विश्वास नहीं करते थे। पर उन्होंने किसी का खण्डन न करके, सबको अपनी प्रेम-मयी वाणी से जीतने की कोशिश की है।

मलिक मुहम्मद जायसी इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने पद्मावत की रचना की है, जो विशुद्ध प्रेम संबंधी प्रबंध काव्य है।

प्रमुख कवि—

मलिक मोहम्मद जायसी इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वे सुप्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मुहीउद्दीन के शिष्य थे। कहा जाता है, कि इनका जन्म गाजीपुर में हुआ था। किन्तु वे जायस (राय बरेली) में आकर बस गए थे। जायस में रहने के कारण ही लोग इन्हें जायसी कहने लगे थे।

यह सुप्रसिद्ध सूफी संत थे। अमेठी के राज-घराने में इन्हें अधिक आदर-सम्मान प्राप्त था।

कहा जाता है, कि यह काने और कुरूप थे। अपने प्रबंध काव्य 'पद्मावत' में इन्होंने अपने काने होने का उल्लेख बड़े गर्व के साथ किया है, और अपने को शुक्राचार्य के समान बताया ।

जायसी बड़े उदार थे, और विशुद्ध प्रेम के पुजारी थे। इन्होंने अपनी प्रेममयी वाणी से हिन्दू और मुसलमान—दोनों के हृदयों में एक ही प्रेम की धारा बहाने का प्रयत्न किया है।

'पद्मावत' जायसी का सुप्रसिद्ध प्रबंध काव्य है। 'पद्मावत' के अतिरिक्त इन्होंने 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' नामक काव्य-पुस्तकें भी लिखी हैं। 'पद्मावत' की रचना में इन्होंने अपनी स्वतंत्र सूझ-बूझ से काम लिया है। 'पद्मावत' की रचना इन्होंने संस्कृत प्रबंध-काव्यों की शैली पर न करके, फारसी की मसनवी शैली पर की है।

'पद्मावत्' में इन्होंने 'ईश्वर' को नारी और 'आत्मा' को पुरुष मान कर दोनों के प्रेम, मिलन, और वियोग का चित्र मार्मिकता के साथ खींचा है।

जायसी की भाषा ठेठ अवधी है। दोहे और चौपाई उनके छन्द हैं।

कुतुबन, मंझन, और उसमान आदि कवियों ने भी प्रेम-मार्गी शाखा के विकास में योग दिया है।

संक्षिप्त परिचय

१. प्रेम-मार्गी शाखा के कवियों ने अपने काव्यों की रचना संस्कृत की सर्ग-बद्ध शैली पर न करके फारसी की मसनवी शैली पर की है।

२. इस शाखा के सभी कवि मुसलमान हैं, जिन्हें हिन्दू धर्म का भी साधारण ज्ञान प्राप्त था।

३. इस शाखा के सभी कवियों ने प्रेम के भावों को काव्य के सूत्र में पिरोया है।

४. प्रेम-कथाएँ हिन्दुओं के जीवन से सम्बन्धित हैं, जिनमें 'सत्य' के साथ-ही-साथ कल्पना का भी योग है।

५. प्रेम-कथाएँ यद्यपि लौकिक हैं, पर उनका झुकाव अलौकिक प्रेम की ओर है। दूसरे शब्दों में वे आत्मा और परमात्मा के प्रेम की झाँकी उपस्थित करती हैं।

६. भाषा सबकी अवधी है।

७. दोहे और चौपाई में ही लगभग सभी कवियों ने रचनाएँ की हैं।

८. श्रृंगार उनका मुख्य रस है।

राम-भक्ति शाखा—

राम-भक्ति शाखा का विकास श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति के द्वारा हुआ है। श्रीरामचन्द्र जी को विष्णु का अवतार मान कर देश के अनेक लोगों ने उनके चरणों में अपनी भक्ति प्रगट की है। उत्तर भारत में राम-भक्ति का प्रचार स्वामी रामानन्द जी के द्वारा हुआ था, जो श्री रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में पाँचवीं पीढ़ी में हुए थे। पर हिन्दी-साहित्य में राम-भक्ति को काव्य के सूत्र में गूँथने का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास जी को है। गोस्वामी तुलसीदास रामानन्दी शिष्य परम्परा में से थे।

गोस्वामी जी ने राम-भक्ति को एक नए रूप में लोक के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने राम-चरित्र का मंथन करके उसके भीतर से चार तत्त्व निकाले—कर्म, शील, शक्ति और सौन्दर्य। उन्होंने इन्हीं तत्त्वों को आधार मान कर राम की उस भक्ति का प्रचार किया, जिसमें लोक-कल्याण की भावना मुख्य रूप से समाई हुई थी।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने उपरोक्त तत्त्वों को ही आधार मान कर अपने काव्य-ग्रन्थों की रचना भी की। इन्होंने 'श्रीरामचरित मानस' और अपने 'विनय-पत्रिका' आदि ग्रन्थों में राम की उस भक्ति का गुण-गान किया, जिसमें पीड़ा, दुःख, दरिद्र, और अत्याचारों के शमन की पूर्ण शक्ति थी।

परिणामतः हिन्दू जनता राम-भक्ति की ओर आकर्षित हो उठी। क्योंकि उस समय उसे ऐसे ही ईश्वर की आवश्यकता थी, जिसकी भक्ति उसके जीवन में मंगल की वर्षा कर सके।

राम-भक्ति के प्रचार और प्रसार का एक और भी कारण था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम-भक्ति को जिस रूप में सामने प्रस्तुत किया, उसमें न तो किसी के प्रति विरोध था, और न किसी के लिए मोह; दूसरे शब्दों में उसमें सबके प्रति आदर था, सबके प्रति निष्ठा थी। उसमें विष्णु के अवतार 'राम' के गुणगान की प्रधानता अवश्य थी, पर उसमें 'शिव' और 'दुर्गा' के लिए भी आदर था। उन्होंने अपने ग्रन्थों में बार-बार 'भक्ति' को प्रधानता अवश्य दी है, पर उन्होंने 'कर्म' और 'ज्ञान' का भी विरोध नहीं किया है।

श्रीराम-भक्ति, और गोस्वामी तुलसीदास जी का 'रामचरित मानस'—दोनों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों के प्रचार-प्रसार और सर्वप्रियता का यही रहस्य है, कि दोनों ने जन-जन को अपनाया है, और दोनों में जन-जन के कल्याण के लिए चिंता है।

प्रमुख कवि—

गोस्वामी तुलसीदास जी राम-भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनका जन्म संवत् १५५४ में बांदा जिलांतर्गत राजापुर में हुआ था। कुछ लोगों का कथन है कि उनका जन्म 'सोरों' में हुआ था, और वे इसके लिए प्रमाण भी देते हैं।

गोस्वामी जी के पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। कहा जाता है कि गोस्वामी जी जब पैदा हुए थे, तो वे पाँच वर्ष के बालक के समान थे, और उनके मुँह में पूरे दाँत थे। इस लिए उनके माता-पिता ने उनका परित्याग कर दिया था।

जो हो, यह तो सत्य है, कि गोस्वामी जी को बाल्यावस्था में अधिक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं। वे भटकते-भटकते बाबा नरहरिदास के आश्रम में पहुँचे। बाबा नरहरिदास जी ने ही उनका पालन-पोषण किया। सर्वप्रथम रामकथा भी गोस्वामी जी ने नरहरिदास जी से ही सुनी थी।

कुछ वर्षों के पश्चात् गोस्वामी जी काशी चले गए। काशी में १५ वर्षों तक उन्होंने शेष सनातन नामक विद्वान् से वेद, वेदांग, शास्त्र, इतिहास और पुराणों का अध्ययन किया। तत्पश्चात् वे अपनी जन्म-भूमि राजापुर लौट गए, और रत्नावली के साथ विवाह करके गृहस्थ का जीवन व्यतीत करने लगे।

कहा जाता है, कि गोस्वामी जी की अपनी स्त्री के प्रति अधिक आसक्ति थी। एक दिन उनकी स्त्री उनकी अनुपस्थिति में अपने भाई के साथ पीहर चली गई। गोस्वामी जी को जब इस बात का पता लगा, तो वे भी तुरन्त ही वहाँ जा पहुँचे। इससे गोस्वामी जी की स्त्री को बड़ी व्यथा और लज्जा हुई। उसने निम्नांकित शब्दों में गोस्वामी जी को फटकार बताई :—

लाज न लागत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चर्ममय देह मम, तामें ऐसो प्रीति।
तैसी जो श्री राम महँ, होति न तो भव-भीति॥

कहा जाता है, कि इस फटकार का गोस्वामी जी के हृदय पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा, और वे घर-द्वार छोड़ कर विरक्त हो गए।

जो हो, यह तो सत्य ही है, कि गोस्वामी जी विरक्त हो गए थे। विरक्त होकर उन्होंने लगातार १५ वर्षों तक देशाटन और तीर्थयात्रा की। पर उनके जीवन के अधिकांश दिन काशी, अयोध्या और चित्र-कूट में ही व्यतीत हुए थे।

सम्वत् १६३१ में उन्होंने 'श्रीरामचरित मानस' की रचना अयोध्या में प्रारम्भ की। अयोध्या, काशी, और चित्रकूट में रहकर उन्होंने अपने इस महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रंथ की रचना की थी। शेष ग्रंथों की रचना भी उन्होंने अयोध्या और काशी में ही रह कर की है।

सम्वत् १६८० में काशी में ही गोस्वामी जी का स्वर्गवास हो गया।

गोस्वामी तुलसीदास उच्च कोटि के संत, तत्त्व-विचारक, राष्ट्र-प्रेमी, और महाकवि थे। उन्होंने 'श्रीरामचरित मानस' की रचना करके हिन्दी साहित्य के मस्तक को बहुत ऊँचा उठा दिया है। उनका 'श्रीरामचरित मानस' जीवन का महाकाव्य है। उसमें सभी रसों, और विविध छन्दों की अवतारणा है। तत्कालीन प्रचलित सभी शैलियों का विकास गोस्वामी जी की रचनाओं में सुष्ठता के साथ हुआ है। जैसे :—

१. वीरगाथा काल की छप्पय शैली;
२. विद्यापति और सूर की गीति शैली;
३. गंग इत्यादि भाटों की कवित्त शैली;
४. नीति के उपदेशों की सूक्ति शैली;

५. जायसी की दोहे, और चौपाई वाली शैली।

'श्रीरामचरित मानस' के अतिरिक्त गोस्वामी जी ने और भी कई महत्त्वपूर्ण काव्य-ग्रंथों की रचना की है, जिनके नाम इस प्रकार हैं :— विनय पत्रिका, दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली, और रामाज्ञा प्रश्नावली आदि।

श्रीराम-भक्ति शाखा के विकास में और भी कई कवियों ने योग दिया है, जिनमें नाभादास, अग्रदास, हृदयराम, प्राणचन्द चौहान, विश्वनाथसिंह तथा रघुराजसिंह का नाम मुख्य है।

संक्षिप्त परिचय

१. राम-भक्ति शाखा के कवियों ने श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति में सेवक, और सेव्य भाव पर अधिक बल दिया है।
२. 'भक्ति' को प्रधानता दी है, किन्तु 'कर्म' और 'ज्ञान' के प्रति विरोध नहीं प्रकट किया है।
३. लोक मर्यादा, और वर्णाश्रम धर्म द्वारा प्रतिपादित समाज व्यवस्था का समर्थन किया है।
४. 'साधना' को सर्वश्रेष्ठ साधन के रूप में स्वीकार किया है। 'साधना' में भी शास्त्रों के वर्णित नियमों के पालन को अत्यावश्यक बताया है।
५. भगवान की कृपा को कर्मों और गुणों से भी अधिक महत्त्व दिया है।
६. मुक्तक और प्रबन्ध—दोनों ही प्रकार के काव्यों की रचना की है। रचना में विविध प्रकार की शैलियों का उपयोग किया है। छन्दों में दोहे और चौपाई को अधिक प्रश्रय दिया गया है, पर दूसरे छन्दों का प्रयोग भी किया गया है।

७. भाषा अवधी है; पर ब्रज में भी रचना की गई है। बुन्देलखण्डी और भोजपुरी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। अरबी-फारसी के शब्द भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुए हैं।

कृष्ण-भक्ति शाखा—

कृष्ण-भक्ति शखा का आधार श्रीकृष्ण भक्ति है। श्रीराम की तरह श्री कृष्ण भी विष्णु के अवतार हैं। श्रीराम की ही तरह अनेक लोगों ने श्रीकृष्ण के प्रति भी अपने हृदय की भक्ति प्रगट की है। उत्तर भारत में वल्लभाचार्य जी से कृष्ण-भक्ति के प्रचार और प्रसार में अधिक योग प्राप्त हुआ है।

हिन्दी-साहित्य में कृष्ण-भक्ति का काव्य के सूत्र में गुम्फन सूरदास जी के द्वारा मुख्य रूप से हुआ है। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरित्र को आधार मानकर अपने काव्य-ग्रन्थों की रचना की है, उसी प्रकार सूरदास जी ने भी श्रीकृष्णचरित्र को आधार मान कर 'सूरसागर' की रचना की है। पर गोस्वामी तुलसीदास जी का 'श्रीरामचरित मानस' जहाँ एक प्रबन्ध काव्य है, वहाँ 'सूरसागर' स्फुट पदों का संग्रह है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने श्री 'रामचरित मानस' में श्रीराम चन्द्र जी के सम्पूर्ण जीवन का चित्र अंकित किया है। पर सूरदास जी की आस्था श्रीकृष्ण के बाल और किशोर जीवन तक ही सीमित रह गई है। यही कारण है, कि सूरदास जी के 'सूरसागर' में संपूर्ण जीवन की झाँकी नहीं मिलती।

तुलसीदासजी की भक्ति लोक-कल्याण की ओर उन्मुख है। लोक-कल्याण के लिए भी उन्होंने राम-भक्ति में कर्म, शील, शक्ति और सौंदर्य की स्थापना भी की है, पर सूरदास की कृष्ण-भक्ति में यह सब प्रपंच मात्र है। वहाँ केवल आनन्द है—परम आनन्द है। आनन्द के लिए ही उन्होंने अपनी भक्ति में प्रेम और सौन्दर्य की स्थापना की है।

सूरदास जी की प्रेम की साधना बड़ी उच्चकोटि की है। उन्होंने कृष्ण और राधा के प्रेम में अपने को डुबो दिया है। वे गोस्वामी तुलसी दास जी की तरह श्रीकृष्ण के सेवक और दास नहीं हैं, बल्कि उनके सखा हैं। उनकी सख्य भावना ने उन्हें स्वयं श्रीकृष्ण बना दिया है। श्री कृष्ण के बाल चरित्रों के चित्रों में ऐसा प्रतीत होता है, मानो सूर-दास जी ही उनके भीतर से श्रीकृष्ण के रूप में बोल रहे हों। सौंदर्य के चित्र भी सूरदास जी के बड़े मार्मिक हैं। ऐसा लगता है, मानो राधा-कृष्ण की छवि का अवलोकन उन्होंने बड़े सन्निकट से किया है।

सूरदास जी ने श्रीमद्भागवत की दशम स्कन्ध की कथा का वर्णन विस्तार के साथ, स्फुट पदों में किया है। उनकी दृष्टि श्री कृष्ण के बाल-जीवन पर ही केन्द्रित है। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण भक्ति उनके बाल-जीवन पर ही निछावर-सी कर दी है। यही कारण है, कि उनके पदों में श्रीकृष्ण के बाल-जीवन के चित्र बड़ी स्वाभाविकता और सरसता के साथ अंकित हो सके हैं।

बाल-जीवन के ऐसे स्वाभाविक चित्र संसार के साहित्य में कहीं खोजने पर भी न मिल सकेंगे।

प्रमुख कवि—

सूरदास जी श्रीकृष्ण-भक्त शाखा के अन्यतम कवि हैं। सूरदास जी का जन्म सम्वत् १५४० के आस-पास आगरा से मथुरा जानेवाली सड़क के किनारे 'रुनकता' नामक गाँव में हुआ था। यह सारस्वत ब्राह्मण थे, और इनके पिता का नाम रामदास था।

सूरदास जी की शिक्षा-दीक्षा किस प्रकार हुई—इस सम्बन्ध में कुछ विशेष पता नहीं चलता। उनके जीवन के सम्बन्ध में कई बातें प्रचलित हैं।

कुछ लोगों का कथन है, कि सूरदास जी सात भाई थे। उनके छः भाई मुसलमानों के द्वारा युद्ध में मार डाले गए थे। सूरदास जी

के घर में जब कोई न रहा, तो वे दुःख से नेत्रहीन हो गए, और घर से निकल पड़े। रास्ते में वे कुएँ में गिर पड़े, जहाँ श्रीकृष्ण ने उन पर कृपा की, और उन्हें कुएँ से बाहर निकाला।

कुछ लोगों का कथन है, कि सूरदास जी किसी स्त्री के प्रति आसक्त थे। उसकी आसक्ति में ही उन्होंने अपनी आँखें गँवा दीं।

जो हो, सूरदास जी आगरे में गऊघाट पर रहते थे, और अपने बनाए हुए पदों का तानपूरे पर गान किया करते थे। वे अच्छे गायक थे। यहीं सूरदास जी की वल्लभाचार्य जी से भेंट हुई। वल्लभाचार्य उन्हें अपने साथ गोवर्द्धन ले गए और श्रीनाथ जी के सेवकों में उन्हें मुख्य स्थान प्रदान किया।

वल्लभाचार्य जी के ही परामर्श से सूरदास जी ने श्रीमद्भागवत की कथा को गेय पदों के साँचे में ढाला, जिनका संग्रह 'सूरसागर' के नाम से प्रसिद्ध है।

सम्वत् १६२० में पारसोली में सूरदासजी का स्वर्गवास हो गया।

सूरदास जी वात्सल्य और शृंगार के सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं। वात्सल्य और शृंगार की जैसी मनोरम झाँकियाँ सूरदास जी के पदों में मिलती हैं, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं मिलतीं। निम्नांकित पंक्तियों में वात्सल्य सजीव-सा बन गया है :—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पिवत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी, ज्यों ह्वै है लांबी मोटी॥

हिन्दी काव्य-जगत् में सूरदास जी 'सूर्य' के समान माने जाते हैं। निम्नांकित पंक्ति में भी यही भाव है—

सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केशव दास।

सूरदास जी की भाँति ही 'अष्टछाप' के कवियों ने भी श्री कृष्ण भक्ति को काव्य के सूत्र में पिरोया है।

अष्टछाप की स्थापना श्री वल्लभाचार्य जी के शिष्य गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के द्वारा हुई थी। अष्टछाप में उन आठ कवियों को स्थान दिया गया है, जिन्होंने राधा-कृष्ण के चरित्र का गान बड़ी तन्मयता के साथ किया है। उन कवियों के नाम इस प्रकार हैं :— (१) सूरदास, (२) कुंभनदास, (३) परमानन्द, (४) कृष्णदास, (५) छीत स्वामी, (६) चतुर्भुजदास, (७) नन्ददास। इस के अतिरिक्त कृष्ण-भक्ति-शाखा के प्रचार में कुछ और कवियों ने भी महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया है, जिन में हितहरिवंश, हरिदास, गदाधर भट्ट, मीराबाई, और रसखान आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

संक्षिप्त परिचय

१. कृष्ण-भक्ति शाखा के कवियों ने श्री कृष्ण की लीलाओं का गान किया है। लीलाओं में बाल और किशोर जीवन की प्रधानता है।
२. वात्सल्य और शृंगार की ही उनकी रचनाओं में प्रधानता है। कहीं-कहीं अद्भुत और शान्त रस की भी अवतारणा हुई है।
३. सभी कवियों ने पदों में रचना की है। मीरा और सूरदास जी के पद अधिक प्रसिद्ध हैं। नन्ददास जी ने अपनी रचनाओं में रोला, दोहा और चौपाई आदि छन्दों का भी प्रयोग किया है।
४. सभी कवियों की रचनाएँ मुक्तक के ही रूप में हैं।
५. सब के काव्य की भाषा 'व्रज भाषा' है।
६. 'भक्ति' पर ही सबने ज़ोर दिया है।
७. भक्ति में 'सख्य भाव' ही सबको प्रिय है।

स्फुट कवि—

इस काल में कुछ ऐसे कवि भी हुए हैं, जिन्होंने विभिन्न विषयों पर मुक्तक के रूप में अपने काव्यों का अभिसार किया है। इन कवियों में नरोत्तमदास, टोडर मल, बीरबल, गंग, मनोहर कवि, बलभद्र मिश्र, केशवदास, रहीम, मुबारक और सेनापति का नाम उल्लेखनीय है।

नरोत्तमदास जी सीतापुर के 'वाड़ी' नामक स्थान में रहते थे। उन्होंने 'सुदामा चरित्र' नामक खण्ड काव्य की रचना की है, जिसमें स्थान-स्थान पर करुण रस की मार्मिकता है।

सुदामा चरित्र की भाषा व्रज है, जो बड़ी सुन्दर और मधुर है। सवैया और कवित्त 'सुदामा चरित्र' के छन्द हैं।

नरोत्तमदास जी के सम्बन्ध में अभी तक केवल इतना ही पता चल सका है, कि संवत् १६०२ में वे जीवित थे।

गंग के जन्म इत्यादि के सम्बन्ध में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। कुछ लोगों का कथन है, कि गंग ब्राह्मण थे, और बड़े निर्भीक थे। कहा जाता है कि गंग अकबर के दरबार में रहते थे, और रहीम खानखाना की उन पर बड़ी कृपा थी। एक बार रहीम खान-खाना ने उनके एक छप्पय पर मुग्ध हो कर उन्हें ३६ लाख रुपया प्रदान किया था।

'गंग' ने स्फुट कवित्तों की रचना की है, जिनमें 'वीर' और शृंगार रस की अवतारणा हुई है।

केशवदास जी का जन्म १६१२ के आस-पास हुआ था। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे, और उनके पिता का नाम काशीनाथ था।

केशवदास जी संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे। वे ओडछा नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह के दरबार में रहते थे। संस्कृत के प्रकांड पंडित होने के कारण उन्होंने अपने साहित्य में संस्कृत के आचार्य भामह, उद्भट और दण्डी का अनुसरण किया है।

केशवदास का मुख्य काव्य ग्रंथ 'रामचन्द्रिका' है। यद्यपि 'रामचन्द्रिका' एक प्रबंध-काव्य है, पर उसमें प्रबन्ध काव्य के गुणों का अभाव है।

रामचन्द्रिका के अतिरिक्त उन्होंने कविप्रिया, रसिकप्रिया, वीर सिंह देव चरित, विज्ञान गीता, रतन-बावनी, और जहाँगीर जस चन्द्रिका की भी रचना की है।

केशव चमत्कारवादी कवि थे। उनके काव्य में आचार्यत्व की प्रतिस्थापना हुई है। शब्द, अलंकार, और छन्दों तक ही उनकी काव्य-कला सीमित रह गई है। भावों और अनुभूतियों का उनकी काव्य-कला में अभाव है।

संवत् १६७४ केशवदास जी का मृत्यु संवत् है।

रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। वे अकबर के सुप्रसिद्ध सरदार बैरमखाँ के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६१० में हुआ था।

रहीम संस्कृत, अरबी और फारसी के प्रकाण्ड पंडित थे। वे बड़े उदार और साहित्य-प्रेमी थे। कवियों की वे मुक्त हस्त से सहायता किया करते थे। गरीबों की सहायता करने में भी वे पीछे न रहते थे।

जीवन के अन्तिम दिनों में रहीम का जहाँगीर से मतभेद हो गया था। परिणामस्वरूप जहाँगीर ने उनकी सारी जायदाद ज़प्त कर ली थी, और उन्हें कारागार में डाल दिया था।

जीवन के अन्तिम दिन रहीम के बड़े कष्ट से व्यतीत हुए थे। गोस्वामी तुलसीदास जी का उन्हें अतुल स्नेह प्राप्त था।

संवत् १६८३ में रहीम का स्वर्गवास हो गया।

रहीम के रहीम दोहावली, बरवै नायिका भेद, शृंगार सोरठ, मदनाष्टकम्, और रास-पंचाध्यायी ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

रहीम के नीति और भक्ति क दोहे अधिक प्रसिद्ध हैं। इनके नीति के दोहे व्यावहारिक जोवन के चित्र हैं। भक्ति के दोहों में श्री कृष्ण को भक्ति मुखरित हुई है।

ब्रज और अवधी—दोनों ही भाषाओं का प्रयोग उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। दोहा, कवित्त, सवैया, सोरठ आदि छन्द उनकी रचनाओं में प्रयुक्त हुए हैं।

सेनापति अनूपशहर के निवासी थे। उनका जन्म संवत् १६४६ के आस-पास हुआ था। हिन्दी काव्य में उनका ऋतु-वर्णन अधिक प्रसिद्ध है। 'कवित्त रत्नाकर' उनका सुप्रसिद्ध ग्रंथ है।

सेनापति की भाषा ब्रज है। उन्होंने अपनी भाषा को यमक और अनुप्रास आदि अलंकारों के द्वारा खूब सजाया है। भाषा पर सेनापति का पूर्ण प्रभाव है। शब्दों के प्रयोग में उन्होंने अनूठी सूझ-बूझ से काम लिया है। उनका एक-एक शब्द उनके भावों का चित्र अंकित करता हुआ जान पड़ता है।

टोडरमल ने नीति सम्बन्धी कवित्तों की रचना की है। बीरबल अकबर का दरबारी कवि था। बीरबल के चुटुकुले बहुत प्रसिद्ध हैं।

बलभद्र मिश्र ने 'नख-शिख' की रचना की है।

उत्तर-मध्यकाल
(संवत् १७००-१९००)

राजनीतिक स्थिति—देश में चारों ओर मुसलमानों का शासन स्थापित हो चुका था। मुसलमानी शासकों को अब किसी का भय न था, इसलिए वे अब अपने दरबारों में रंग-रलियाँ मनाने लगे थे। हिन्दू राजाओं ने अब पूर्ण रूप से लड़ने का विचार छोड़ दिया था। वे या तो निराश हो चुके थे, या लड़ते-लड़ते थक चुके थे। अतः अब वे भी मुसलमान शासकों से अपना सम्बन्ध जोड़ कर भोग-विलास का जीवन बिता रहे थे। मुसलमान शासकों के दरबारों से लेकर हिन्दू राजाओं के दरबारों तक चारों ओर भोग-विलास और शृंगार की ही मुख्यता थी।

मुसलमान सम्राटों और हिन्दू राजाओं के विलासपूर्ण जीवन का जमींदारों के हृदय पर भी प्रभाव पड़ा। जमींदार और नवाब भी उसी रंग में रंग गए।

फिर साहित्य उससे कैसे अछूता रह सकता था? रीति काल का संपूर्ण साहित्य राजा-रईसों के उसी शृंगारिक जीवन का प्रतिबिम्ब है।

सामाजिक और धार्मिक स्थिति—समाज बहुत ही क्षीण हो गया था। नीच-ऊँच का भेद ज़ोरों पर व्याप्त था। छुआछूत की प्रबलता थी। विधर्मियों द्वारा स्पर्श किए जाने पर ही लोग जाति-बहिष्कृत कर दिए जाते थे। जिसे एक बार जाति से निकाल दिया जाता था, उसे फिर जाति में सम्मिलित नहीं किया जाता था।

हिन्दू धर्म की दयनीय अवस्था थी। हिन्दू धर्म चारों ओर सिसकियाँ-सा भर रहा था। धर्म के नाम पर चारों ओर पाखंड फैला

हुआ था। यवन धर्म की धूम थी। जनता में भक्ति की भावनाएँ जाग पड़ी थीं, पर अन्धविश्वास की प्रधानता थी।

जनता पूर्ण रूप से ग़रीब हो चुकी थी। तरह-तरह के करों और टैक्सों से उनके पीठ की रीढ़ झुक चुकी थी। एक ओर मुसलमान शासकों को उसे प्रसन्न करना पड़ता था; और दूसरी ओर हिन्दू राजाओं को। दोनों के अत्याचारपूर्ण पाटों के बीच में जनता की दुर्गति हो रही थी। लोग किसी प्रकार साँसें ले रहे थे, पर मरे हुए के समान ही थे।

रीति-काल का साहित्य—इस समय जिस साहित्य की रचना हुई, उस पर जन-जीवन की छाप नहीं है। क्योंकि उस समय जन-जीवन एक प्रकार से निष्प्राण हो चुका था। उसकी सिर्फ आवाज़ें थीं, पर उसमें शक्ति न थी।

उस समय जन-जीवन के ऊपर उन राजाओं, रईसों, बादशाहों और नवाबों की छाप थी, जो जन-जीवन से दूर अपने-अपने दरबारों में नाना प्रकार की रंग-रलियाँ मनाने में व्यस्त थे।

अतः उस समय जिस साहित्य की रचना हुई, उस पर राजा, रईसों, बादशाहों और नवाबों के विलासपूर्ण जीवन की पूरी छाप है। इस साहित्य की रचना दरबारों में हुई है। इसीलिए हम उसे दरबारी साहित्य भी कहते हैं।

इस साहित्य में वासनाओं को उद्दीप्त करने वाले शृंगार की प्रधानता है। इसके प्रणेताओं का ध्येय राजाओं, रईसों, और नवाबों को प्रसन्न करना और उनसे बड़ी-बड़ी जागीरें प्राप्त करना था। दो सौ वर्ष के लम्बे युग तक शृंगारिक और वासनात्मक साहित्य हमारे समाज में गूँजता रहा है। इसी साहित्य को हम रीतिकाल का शृंगारिक साहित्य कहते हैं।

रीतिकाल का सम्पूर्ण साहित्य वासनात्मक है। शृंगार रसकी अवतारणा में पग-पग पर मर्यादा की बलि दी गई है। शृंगार रस को लोक-

प्रिय बनाने के लिए राधा-कृष्ण को भी कीचड़ में घसीटने से लोग बाज़ न आए। राधा-कृष्ण को साधारण प्रेमी और प्रेमिका मानकर, रीति-काल के कवियों ने उनके साथ जी भर कर खेलवाड़ किया है।

रीतिकाल का संपूर्ण साहित्य चमत्कारिक है। रीतिकाल के का जितना ध्यान आचार्यत्व और पांडित्य-प्रदर्शन की ओर था, उतना कोमल भावनाओं और अनुभूतियों के चित्रण की ओर नहीं था। यही कारण है, कि रीतिकाल के कवियों की रचनाएँ मानव हृदय के द्वन्द्वों और कोमल अनुभूतियों से दूर हैं। रीतिकाल के कवियों ने बड़े-बड़े लक्षण ग्रंथों की रचना की है, पर किसी का भी ध्यान प्रबन्धकाव्य की रचना की ओर न जा सका। हिन्दी काव्य साहित्य में यह एक खटकने वाली ही बात है, कि रीतिकाल के दो सौ वर्ष के लम्बे समय में उसमें एक भी प्रबंधकाव्य की रचना न हो सकी।

पर रीतिकाल में ऐसे कवि अवश्य हुए हैं, जिन्होंने अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति का परिचय दिया है; अर्थात् उन्होंने रीतिकाल की शृंगारिक धारा में न बह कर, भक्ति और वीरता के क्षेत्र में अपनो रचनाओं का अभिसार किया है। भक्ति के क्षेत्र में राम और कृष्ण की भक्ति को आधार मानकर कवियों ने अपनी-अपनी भावनाओं का गुंफन काव्य के सूत्र में किया है। राधा और कृष्ण की भक्ति को आधार मानकर निर्मित रचनाओं में भक्ति के तत्त्वों का सर्वाधिक विकास हुआ है। राम-भक्ति का भी चित्र अंकित किया गया है,पर उस में यह चमक नहीं है, जो राधा-कृष्ण की भक्ति के चित्रण में है।

शिवाजी और छत्रसाल के वीरतापूर्ण चरित्र को आधार मान-कर, वीर भावों की भी उपासना की गई है।

रीति-साहित्य के प्रवर्तक—

कुछ लोग केशव को रीति-साहित्य का प्रवर्तक मानते हैं। क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' आदि ऐसे ग्रंथों

की रचना की, जिनमें रीति विषयक बातों का उल्लेख मिलता है । पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार केशव एक चमत्कारवादो कवि थे। उन्होंने जिस साहित्य की रचना को है, उसमें केवल अलंकारों और छन्दों की भरमार है ।

केशव को रीति-काव्य का प्रवर्तक न मानने का एक दूसरा कारण यह है, कि केशव के पश्चात् पचासों वर्षों तक हिन्दी काव्य में रीति-काव्य की धारा स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ती। यह दूसरी बात है, कि यत्र-तत्र शृंगारिक रचनाएँ होने लगी थीं, और यह प्रगट होने लगा था, कि हिन्दी-काव्य की धारा धीरे-धीरे शृंगार की ओर मुड़ रही है।

इस दृष्टि से चिन्तामणि त्रिपाठी की रचनाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। चिन्तामणि त्रिपाठी के 'काव्यप्रकाश', 'काव्य विवेक' और 'कवि कुलकल्पतरू' की रचना के पश्चात् हिन्दो काव्य में शृंगार की धारा अजस्र रूप में बहती हुई दिखाई पड़ती है, और वह लगातार दो सौ वर्षों तक उसे अभिषिक्त करती रही है। यद्यपि रीतिकाल की रचनाओं से देश और समाज का कोई कल्याण न हो सका, पर यह तो मानना ही पड़ेगा, कि शृंगार रस, और अलंकारों के दृष्टान्त उपस्थित करने के लिए ये रचनाएँ अद्वितीय हैं।

केवल यही इन रचनाओं का महत्त्व है।

प्रमुख कवि—

चिन्तामणि त्रिपाठी का जन्म संवत् १६६६ में कानपुर के पास तिकवाँपुर नामक गाँव में हुआ था । हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि भूषण और मतिराम इनके भाई थे। इन्होंने 'कवि-कुलकल्पतरु', 'काव्य विवेक' और 'काव्यप्रकाश' नामक ग्रंथों की रचना की है।

इनके पश्चात् ही हिन्दी काव्य में रीति काव्य की धारा अविकल रूप से प्रवाहित हुई है। इसलिए कुछ लोग इन्हीं को रीति काव्य का प्रवर्तक भी मानते हैं।

भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से उनकी रचनाओं का महत्त्व है। उनकी रचनाओं पर मुग्ध होकर शाहजहाँ ने उन्हें पुरस्कृत भी किया था।

उनकी भाषा ब्रज है, जो शुद्ध और परिमार्जित है।

मतिराम का जन्म संवत् १६७४ में कानपुर जिलांतर्गत तिकवाँपुर नामक गाँव में हुआ था। यह चिंतामरण के भाई थे।

यह बूँदी के महाराज भावसिंह के दरबार में रहते थे। इन्होंने 'ललित ललाम', 'रसराज', 'छन्दसार', 'साहित्य सार', 'लक्षरण शृंगार' और 'मतिराम सतसई' की रचनाएँ की हैं। 'ललित ललाम' अलंकार और 'छन्द सार' पिंगल ग्रंथ हैं। 'रसराज' में 'रस' की विवेचना की गई है।

रीतिकाल के कवियों में मतिराम को सुप्रसिद्ध स्थान प्राप्त है। उनकी रचनाओं में ब्रज भाषा की सरसता और स्वाभाविकता सर्वोत्तम रूप में मिलती है। प्रसाद गुरण और माधुर्य के लिए भी उनकी रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

भावों के मार्मिक चित्र भी मतिराम की रचनाओं में मिलते हैं। उन्होंने नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं और उनके हृदयगत भावों का चित्रण बड़ी स्वाभाविकता के साथ किया है।

यद्यपि मतिराम का मुख्य रस शृंगार है, पर उन्होंने 'वीर रस' के छन्दों की भी रचना की है।

जसवन्तसिंह मारवाड़ के राजा थे। उनका जन्म संवत् १६८३ में हुआ था। उनके पिता का नाम गजसिंह था। यह बड़े वीर और प्रतापी थे। औरंगजेब भी इनकी वीरता का लोहा मानता था।

ये बड़े विद्वान् और साहित्य-प्रेमी थे। इनके राज्य-काल में हिन्दी साहित्य की अच्छी उन्नति हुई थी। रीतिकाल के आचार्यों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनका 'भाषा भूषण' अलंकार

ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। संस्कृत के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'चन्द्रालोक' के आधार पर 'भाषा भूषण' की रचना हुई है।

बिहारीलाल का जन्म ग्वालियर के निकट बसुवा गोविन्दपुर में संवत् १६६० में हुआ था। यह जाति के माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे।

बिहारीलाल की बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में व्यतीत हुई। तरुणावस्था में अपनी ससुराल मथुरा में चले आए। जयपुर के राजा महाराज जयसिंह बिहारी का बड़ा सम्मान करते थे।

कहा जाता है, कि बिहारी जब जयपुर गए थे, तो जयपुर नरेश अपना राज-काज भूलकर अपनी रानी के प्रेम में परिलिप्त थे। वह राजमहल के बाहर नहीं निकलते थे। दरबारी और प्रजा में इससे चिंता व्याप्त थी।

बिहारी को जब यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने यह दोहा लिख कर राजा के पास भेजा—

'नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बँध्यौ, आगे कौन हवाल॥

बिहारी के इस दोहे ने कमाल का काम किया। राजा पुनः राज्यकार्य म लग गए, और साथ ही उन पर बिहारी की धाक भी जम गई।

कहा जाता है, कि जयपुर नरेश ने बिहारी को इसी प्रकार के सरस और भावपूर्ण दोहे लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। बिहारी दोहों की रचना करने लगे। उन्हें प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी पुरस्कार में दी जाती थी। इस प्रकार बिहारी ने सात सौ दोहों की रचना की। उन्हीं दोहों का संग्रह 'बिहारी सतसई' के नाम से प्रसिद्ध है।

हिन्दी काव्य-जगत् में 'बिहारी सतसई' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'बिहारी सतसई' के एक-एक दोहे में शृंगार रस की अपूर्व झाँकी देखने को मिलती है। शृंगार के दोनों ही पक्ष, संयोग और वियोग, बिहारी सतसई के दोहों में सजीव हो उठे हैं। हाव, भाव, और कटाक्षों

का जैसा चित्र बिहारी की रचनाओं में मिलता है, वैसा अन्य कहीं नहीं मिलता। निम्नांकित पंक्तियों में हाव-भाव की साकारता देखिए—

बतरस लालच लाल जी, मुरली धरी लुकाइ।
सौह करै, भौंहनि हँसै, देन कहे नटि जाइ॥

ऐसा प्रतीत होता है, मानो हाव-प्रदर्शन का एक चित्र-सा खड़ा हो गया है। इसी प्रकार भाव-प्रदर्शन का चित्र भी बड़ा ही अनूठा है :—

इत आवति चलि जात उत, चली छै सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सों रहै, लगी उसासन साथ॥

'बिहारी सतसई' मुक्तक काव्य की सर्वोत्कृष्ट रचना है। 'दोहे' ऐसे छोटे छन्द में भावों का संसार बसाने में बिहारी ने अपूर्व चातुर्य प्रदर्शित किया है। बिहारी के चातुर्य को ही देख कर लोग यह कहते हैं, कि बिहारी ने गागर में सागर भर दिया है।

बिहारी के दोहों की भाव और अर्थगम्भीरता को लक्ष्य करके निम्नांकित दोहा कहा गया है :—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर॥

रीतिकाल के कवियों की तरह बिहारी ने न तो लक्षण ग्रंथों की रचना की, और न आचार्यत्व का ही प्रदर्शन किया है। फिर भी उन की रचनाओं में नायिका-भेद, नख-शिख, और षट् ऋतु वर्णन के चित्र तो मिलते ही हैं।

बिहारी की भाषा व्रज है, जो चलती हुई होने पर भी साहित्यिक है। बिहारी ने अपनी भाषा में शब्दों की तोड़-मरोड़ नहीं की है। इसलिए इनकी भाषा में सर्वत्र एक-सी प्रवाहमयता मिलती है।

※ **देव** इटावा के निवासी थे। इनका जन्म संवत् १७२० में हुआ था। देव बड़ी स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे। इसलिए उन्हें कोई अच्छा

आश्रयदाता न मिल सका। कई राजाओं के दरबार में वे गए, पर उन्हें कहीं संतोष प्राप्त न हो सका।

देव ने ७२ ग्रंथों की रचना की है, जिनमें 'अष्टयाम', 'भाव विलास', 'भवानी विलास', 'कुशल विलास', 'काव्य रसायन', और 'शब्द रसायन' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

आचार्य और कवि—दोनों ही दृष्टियों से देव का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी कविता का मुख्य विषय प्रेम है। इनके प्रेम-चित्रण में तन्मयता और स्वाभाविकता मिलती है। प्रकृति के चित्र भी इन्होंने खींचे हैं, जो बड़े सजीव हैं। कहीं-कहीं वेदांत की झलक भी इनकी रचनाओं में मिलती है।

देव की व्रजभाषा बड़ी प्रौढ़ और शुद्ध है। शब्दों का तोड़-मरोड़ अधिक होने से कहीं-कहीं इनकी भाषा में दुरूहता उत्पन्न हो गई है।

भूषण का जन्म संवत् १६७० में हुआ था। ये चिंतामणि और मतिराम के भाई थे। चित्रकूट के राजा 'रुद्र' ने भूषण को 'कवि भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था। इस उपाधि ने 'भूषण' के वास्तविक नाम को छिपा दिया, और वे सर्वत्र भूषण के नाम से प्रसिद्ध हो उठे।

भूषण का असली नाम क्या था—यह अज्ञात है।

महाराज शिवाजी, और छत्रसाल के भी दरबार में भूषण कई वर्षों तक रहे। महाराज शिवाजी और छत्रसाल—दोनों ही भूषण का अधिक आदर सम्मान करते थे। कहा जाता है, कि एक बार महाराज छत्रसाल ने भूषण की पालकी उठाने के लिए अपना कंधा तक लगा दिया था। उनकी इसी गुणग्राहकता पर रीझ कर भूषण ने कहा था—

"सिवा को बखानौं, कि बखानौं छत्रसाल को।"

रीतिकाल में जब शृंगार रस की अखंड धारा प्रवाहित हो रही थी, भूषण ने वीर रस में रचनाएँ करके अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति का परि-

चय दिया । एक ओर भूषण ने जहाँ अपनी रचनाओं के द्वारा साहित्य जगत् में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया है, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा देश की रगों में नवजीवन का संचार भी किया है। भूषण ने अपनी संपूर्ण रचनाओं में शिवाजी और छत्रसाल के वीरता-पूर्ण चरित्र अंकित किए हैं। शिवाजी और छत्रसाल—दोनों ही तत्कालीन समाज और देश के सुप्रसिद्ध नेता थे। दोनों ही भारतीय स्वतन्त्रता के लिए औरंगजेब से मोर्चा ले रहे थे। इस दृष्टि से अगर हम भूषण को राष्ट्रीय कवि की संज्ञा दें तो अत्युक्ति न होगी।

भूषण ने 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी', और छत्रसाल दशक आदि काव्य-ग्रंथों की रचना की है। 'शिवराज भूषण' अलंकार ग्रंथ है। इस ग्रंथ से पता चलता है, कि रीतिकाल का प्रभाव भी भूषण पर था।

भूषण की भाषा ब्रज है। उन्होंने शब्दों की तोड़-मरोड़ अधिक की है। संस्कृत के शब्दों के साथ ही साथ अरबी-फारसी के शब्द भी इनकी भाषा में प्रयुक्त हुए हैं। बुन्देलखण्डी का प्रभाव इनकी भाषा पर सबसे अधिक है।

भिखारीदास प्रतापगढ़ जिलांतर्गत ट्योंगा गाँव के निवासी थे। ये श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनका कविता काल संवत् १७८५ से संवत् १८०७ तक माना जाता है।

आचार्य और कवि—दोनों ही दृष्टियों से इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'रस सारांश', 'छंदोर्णव', 'पिंगल', 'शृंगार निर्णय', और 'काव्य निर्णय' आदि ग्रंथ इनके आचार्यत्व की पुष्टि करते हैं। इन ग्रंथों में रस, अलंकार, छन्द, रीति, गुण, दोष इत्यादि का विवेचन विस्तार के साथ किया गया है।

कवि की दृष्टि से इन्होंने आंतरिक भावों के चित्रण में सुख्याति प्राप्त की है। निम्नांकित पंक्तियों के भीतर से भाव झाँक-से रहे हैं :—

नैनन को तरसैए कहाँ लौं, कहाँ लौं हियो बिरहागि में तैए ।
एक घरी न कल पैए, कहाँ लागि प्रानन को कलपैए ।
आवै यही अब जी में विचार सखी चलि सौं तिहुँ के घर जैए ।
मान घटे ते कहा करिहै जुपै प्रान पियारे को देख न पैए ।

भिखारीदास जी की भाषा ब्रज है, जो आडम्बरहीन, सरस और परिमार्जित है ।

रीतिकाल में और भी कितने ही कवियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा शृंगार का पोषण किया है । इन कवियों में पद्माकर, बेनी, मण्डन, कुलपति मिश्र, सुखदेव मिश्र, कालिदास त्रिवेदी, सुरति मिश्र, श्रीधर, श्रीपति, सोमनाथ, दूलह, बेनी, बंदीजन, बेनी प्रवीन, और ग्वाल कवि आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

स्फुट साहित्य—

रीतिकाल में ऐसे कवि भी हुए हैं, जिन्होंने रीति काव्य न लिख कर स्वतन्त्र रूप से विभिन्न विषयों पर रचनाएँ की हैं । इस प्रकार की स्फुट रचनाओं को हम निम्नांकित वर्गों में बाँट सकते हैं—(१) प्रबंध काव्यात्मक रचनाएँ, (२) भक्ति संबंधी रचनाएँ, (३) नीति संबंधी रचनाएँ, और (४) स्वच्छन्द शृंगारिक रचनाएँ । प्रबन्ध काव्यात्मक रचनाओं की सृष्टि करने वालों में सबल सिंह चौहान का महत्त्वपूर्ण स्थान है । भक्ति संबंधी रचनाओं के सृजन में नागरीदास अद्वितीय हैं । वृन्द ने अपने दोहों में नीति का चित्रण किया है । घनानन्द, आलम, बोधा, और ठाकुर आदि ने स्वच्छन्द रूप से शृंगारिक रचनाएँ की हैं ।

स्फुट-काव्य के कवि—

सबल सिंह चौहान ने दोहों-चौपाइयों में महाभारत की कथा लिखी है । यह एक बहुत बड़ा ग्रंथ है । भाषा और काव्य की दृष्टि से

यद्यपि यह उच्च कोटि का प्रमाणित नहीं होता, पर स्फुट साहित्य में प्रबंध-काव्य के रूप में इसका विशिष्ट स्थान है।

सीधी-सादी भाषा में कथा का चित्रण उत्तमता के साथ किया गया है।

लाल का पूरा नाम गोरेलाल पुरोहित था। ये मऊ बुन्देलखण्ड के निवासी थे। इन्होंने 'छत्रप्रकाश' की रचना की है। इसमें महाराज छत्रसाल के जीवन-चरित्र का वर्णन दोहे-चौपाइयों में किया गया है। यद्यपि यह अधूरे रूप में मिलता है, पर जो कुछ है, उससे लाल के काव्य-गुणों पर प्रकाश पड़ता है। 'लाल' की इस रचना में प्रबन्धपटुता के साथ ही साथ भावों की स्वाभाविकता, और सुन्दरता भी देखने को मिलती है।

भाषा व्रज है, जिसमें बुन्देलखण्डी का भी मिश्रण है।

सूदन मथुरा के निवासी थे। इनके पिता का नाम बसन्त था। ये भरतपुर के राजा, सूरजमल के दरबार में रहते थे। इन्होंने 'सुजान चरित्र' की रचना की है।

वृन्द मेड़ता के निवासी थे। ये कृष्णगढ़ के राजा, महाराज राजसिंह के गुरु थे। इन्होंने 'वृन्द सतसई' की रचना की है। 'वृन्द सतसई' में सात सौ दोहे हैं, जिनमें नीति सम्बन्धी भावों का चित्रण हुआ है। हिन्दी में वृन्द अपने नीति के दोहों के लिए ही अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। उनका नीति संबंधी एक दोहा इस प्रकार है :—

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस सिंगार न सुहात॥

नागरीदास कृष्णगढ़ के राजा थे। इनका जन्म संवत् १७५६ में हुआ था। बाल्यावस्था में ही इन्होंने अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दिया था। पर घरेलू कलह ने इनके हृदय में विरक्ति उत्पन्न कर दी, सब कुछ त्याग कर वृन्दावन में जाकर रहने लगे थे।

इनका कविता काल संवत् १७८० से १८१९ तक माना जाता है। ये श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनकी रचनाओं में इनके हृदय की भक्ति की मनोरम झाँकी मिलती है। इन्होंने अपने भावों का गुम्फन पद, कवित्त, सवैया, और रोला आदि छन्दों में किया है।

इनकी भाषा अधिक सरस, और चलती है। इन्होंने छोटी-बड़ी मिलाकर ७३ पुस्तकों की रचना की है।

दीनदयालगिरि का जन्म संवत् १८५९ में काशी में हुआ था। ये महन्त कृष्णगिरि के शिष्य थे। हिन्दी और संस्कृत पर इन्हें अधिकार प्राप्त था। इन्होंने 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' की रचना करके सुख्याति प्राप्त की है। 'अनुराग वाग', 'वैराग्य दिनेश', 'विश्वनाथ नवरत्न' और 'दृष्टान्त तरंगिणी' आदि की रचना इनके द्वारा हुई है।

हिन्दी काव्य-जगत् में अपनी अन्योक्तियों के लिए ये अधिक प्रसिद्ध हैं।

आलम जाति के ब्राह्मण थे, पर शेख नामक एक रँगरेजिन के प्रेम के कारण मुसलमान हो गए थे। ये औरंगजेब के द्वितीय बेटे मुअज़्ज़म के दरबार में रहते थे।

इनकी रचना में प्रेम के तत्त्वों की प्रधानता है। 'प्रेम की पीर' इनके शब्दों में साकार सी हो उठी है। इनकी शृंगार संबंधी सूक्तियाँ भी बड़ी अनूठी और मार्मिक हैं। निम्नांकित पंक्तियों में इनके 'प्रेम की पीर' का ही एक चित्र है।

"जा थल कीने विहार अनेकन, ता थल काँकरी बैठि चुन्यौं करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन, ता रसना सों चरित्र गुन्यौं करैं॥
आलम जोन से कुंजन में करी केलि, तहाँ अब सीस धुन्यौं करैं।
नैनन में जो सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यौं करैं॥

इनकी रचनाओं का संग्रह 'आलम केलि' के नाम से निकला है।

'शेख' भी कविता करती थी। 'आलम केलि' में कितने ही कवित्त ऐसे हैं, जिनकी रचना शेख के द्वारा हुई है।

घनानन्द का जन्म संवत् १७४६ में हुआ था। ये जाति के कायस्थ थे, और मुहम्मदशाह के यहाँ मुन्शीगीरी का काम करते थे। संगीत के प्रति इनके हृदय में अधिक अनुराग था। कहा जाता है, कि सुजान नामक एक वेश्या के प्रति इनके मन में गहरी आसक्ति थी, पर उसकी उदासीनता ने इनके मन में विरक्ति उत्पन्न कर दी, और ये वृन्दावन में जाकर रहने लगे थे। नादिरशाह ने संवत् १७९६ में जब मथुरा पर आक्रमण किया था, तो उसके सिपाहियों के कोप के ये भी शिकार हो गए थे।

घनानंद ने 'सुजान सागर', 'विरह लीला', 'कोकसार', 'रसकेलि वल्ली', और 'कृपा काण्ड' आदि ग्रंथों की रचना की है।

घनानन्द की रचनाओं में संयोग और वियोग दोनों पक्षों के मार्मिक चित्र मिलते हैं। वियोग के चित्रण में 'आन्तरिक पीर' की व्यंजना ने एक आकार-सा धारण कर लिया है।

इनकी भाषा बड़ी विशुद्ध, सरस, शक्तिशालिनी, और टकसाली है। रीतिकाल का बड़ा से बड़ा कवि भी घनानन्द के समान सरस, और टकसाली भाषा का प्रयोग नहीं कर सका है। निम्नांकित पंक्तियों में भाव और भाषा दोनों का ही एक सजीव चित्र है :—

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोचननि लै-लै आँजिहौं।
रति वासना सवाद पाँवड़े पुनीतकारी पाय,
चूमि-चूमि कै कपोलनि सो माँजिहौं।
जान प्यारे प्रान अंग-अंग रुचि रंगनि में,
बोरि सब अंगन अनंग दुख भाजिहौं।

कब घन आनंद ढरौ ही वानि देखें,
सुधा हेत मरघट दरकनि सुठि राजिहौं ।

इनके अतिरिक्त स्फुट काव्य की रचना में और भी कवियों ने योग प्रदान किया है, जिनमें महाराज विश्वनाथ सिंह, वैताल, गुरु गोविन्द सिंह, गुमान मिश्र, सूरजन राम पंडित, ब्रजवासी दास, मधुसूदन दास, बोधा, कृष्णदास, राम सहायदास, पजनेस, और चन्द्रशेखर इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है ।

संक्षिप्त परिचय

१. रीतिकाल के कवियों का मुख्य रस 'शृंगार' है । पर 'वीर रस' की भी उत्कृष्ट रचनाएँ हुई हैं ।

२. नीति और भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ भी कुछ कवियों के द्वारा हुई हैं, जो रीतिकाल के ही अंतर्गत आते हैं ।

३. रीति काल में लक्षण ग्रंथों की रचना विशेष रूप से हुई है ।

४. रस, अलंकार, छन्द, नायक-नायिकाओं और उनके हाव-भाव तथा कटाक्षों का विवेचन विस्तार के साथ किया गया है ।

५. मुक्तक काव्य की ही रचना विशेष रूप से की गई है ।

६. सवैया, दोहा, और कवित्त आदि छन्दों का ही प्रयोग प्रायः सभी कवियों ने किया है ।

७. रीतिकाल के संपूर्ण कवियों की भाषा व्रज है । व्रज में अरबी, फारसी, और बुन्देल खण्डी आदि के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है ।

८. इस काल के सभी कवि किसी न किसी राजा, रईस, या बादशाह के आश्रित थे । अतः उनकी रचनाओं का उद्देश्य केवल अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना था ।

९. इस काल के प्रायः सभी कवियों का ध्यान पांडित्य-प्रदर्शन और आचार्यत्त्व की ओर ही केन्द्रित रहा है ।

आधुनिक-काल

(संवत् १९०० से आज तक)

राजनैतिक स्थिति—भक्ति-काल में मुसलमानों का जो शासन स्थापित हुआ था, अब उसकी दीवालें ढह चुकी थीं। जगह-जगह मुसलमानों की रियासतें बन गई थीं। पर ये रियासतें भी अब स्वतंत्र नहीं थीं। हिन्दू और मुसलमान—दोनों के ऊपर अब ईस्ट इण्डिया कम्पनी की हुकूमत थी। हिन्दुओं की आशाएँ तो पहले ही मिट चुकी थीं, अब मुसलमानों के हौसले भी ढीले हो गए थे। अँग्रेज सारे भारत पर छा गए थे। हिन्दू और मुसलमान—अब दोनों दासता की जंजीरों में एक साथ ही आबद्ध थे।

१८५७ में हिन्दू और मुसलमान—दोनों ने मिलकर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह किया। पर आपसी फूट और लोभ के कारण सफलता प्राप्त न हुई। अंग्रेज विद्रोह को दबाकर दृढ़ता के साथ भारत पर जम गए। देशी राजा और नवाब आदि गुलामी की छाया में ऐश-इशरत की ज़िन्दगी बिताने लगे। प्रजा और जनता से इनका सम्बन्ध टूट गया। अँग्रेजों के लिए अब रास्ता साफ हो गया। वे सारे भारत को अपनी मुट्ठी में लेकर, उसकी ज़िन्दगी की नाव को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने लगे।

सामाजिक और धार्मिक स्थिति—समाज छिन्न-भिन्न हो चुका था। लोग भाँति-भाँति के दलों और वर्गों में बँटे हुए थे। सबको सिर्फ अपनी ही अपनी चिन्ता थी। राजा, रईसों, नवाबों, और शासकों की दया किस तरह प्राप्त होगी—यही चिन्ता सबके मन में डोलती रहती थी। अपने-अपने स्वार्थों के लिए लोग देश और धर्म की भी बलि

देने में न हिचकते थे। पारस्परिक ईर्षा और द्वेष जोरों पर फैला हुआ था। राजा, रईसों, ज़मींदारों, और नवाबों के आतंक से जनता सदैव भयभीत सी रहती थी।

स्त्रियों की दयनीय अवस्था थी। अपहरण की घटनाओं की भरमार थी। अपहरण के भय से लोग छोटी-छोटी लड़कियों का ही विवाह कर दिया करते थे। इस प्रकार एक ओर जहाँ बाल-विवाह की कुप्रथा पंख पसार रही थी, वहाँ दूसरी ओर विधवाओं की संख्या में भी अभिवृद्धि होती जा रही थी। बाल-विवाह और विधवाएँ—इन दोनों ने समाज के जीवन को जर्जर बना दिया था।

अँग्रेजों के साथ-ही-साथ एक नए धर्म ने भी देश में प्रवेश किया। यह नया धर्म ईसाई धर्म था। अभी तक हिन्दू और मुसलमान—सिर्फ दो ही धर्म थे। ईसाई धर्म ने एक तीसरे धर्म के रूप में देश में अपना स्थान बनाया। हिन्दू और मुसलमान—दोनों ही धर्मों के लोग ईसाई धर्म से प्रभावित हुए। इसका कारण था ईसाई धर्म में समाविष्ट मानवीय प्रेम। यद्यपि अंग्रेज शासक थे, पर ईसाई धर्म ने ज़ोर-जुल्म से नहीं, अपने मानवीय प्रेम से ही अपना स्थान बनाया। स्थान-स्थान पर गिरजे तो बनाए ही गए, साथ-ही-साथ पाठशालाएँ और अस्पताल भी खोले गए। दीन-दुःखियों की सेवा और चिकित्सा को विशेष महत्त्व दिया गया; परिणामतः ईसाई धर्म का प्रभाव ऐसे लोगों पर विशेष रूप से पड़ा, जो समाज से उपेक्षित थे, या जीवन के क्षेत्र में पिछड़े हुए थे।

किसानों और मज़दूरों में ग़रीबी थी। किसानों के ऊपर माल-गुजारी, और भाँति-भाँति के टैक्सों का बोझ लदा ही रहता था। दिन-रात परिश्रम की आग में खून सुखाने पर भी उन्हें सुख की रोटी नसीब न होती थी। मज़दूरों को बहुत कम मज़दूरी दी जाती थी। बेगार प्रथा भी ज़ोरों पर थी। दूसरी ओर राजे-महाराजे, नवाब, ज़मीदार और

ताल्लुकेदार अपनी विलास-वासनाओं की पूर्ति में पानी की तरह रुपया बहा रहे थे। वे किसानों और मजदूरों के परिश्रम की बदौलत ऊँचे-ऊँचे शानदार मकानों में रहते थे, और सुख के साथ जीवन बिता रहे थे। निम्न श्रेणी के लोग दरिद्रता और ग़रीबी की शिला के नीचे दबे हुए थे। वे इस बात की आशा भी छोड़ चुके थे कि कभी उनका इस जीवन से उद्धार भी हो सकता है।

परिवर्तन का उदय—योरोप में औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप कल-कारखाने भी खुल गए थे, और उनमें भाँति-भाँति की उपयोगी वस्तुएँ भी तैयार होने लगी थीं। योरोप वालों के सामने यह बहुत बड़ा प्रश्न था, कि वे अपनी इन वस्तुओं की खपत कहाँ करें ? उन्हें इन वस्तुओं की खपत के लिए एक अच्छे बाज़ार की आवश्यकता थी। अंग्रेजों ने उस बाज़ार को खोज निकाला। वह बाज़ार था भारत। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सर्वप्रथम इसी उद्देश्य से भारत में प्रवेश किया था। पर उसके इस उद्देश्य की भलीभाँति पूर्ति उस समय तक नहीं हो सकती थी, जब तक कि वह भारत पर आधिपत्य न स्थापित कर ले। उसने सैनिक शक्ति का संगठन प्रारम्भ कर दिया। तत्कालीन युग राजनैतिक अस्त-व्यस्तता का युग था। मुसलमानों के शासन की नींव हिल चुकी थी। हिन्दू शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो चुकी थीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इससे लाभ उठाया। उसने एक को मिला कर और दूसरे को दबाकर भारत पर कब्जा जमाना आरम्भ कर दिया। १८५७ के विप्लव के बाद तो भारत की पूर्ण सत्ता अंग्रेजों के हाथ में आ गई।

पर अँग्रेज भारत पर आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात् मुसलमानों की तरह ऐश-इशरत में नहीं फँसे। अपने देश की वस्तुओं की खपत के लिए उन्हें भारत को एक अच्छे बाज़ार के रूप में परिवर्तित करना था। उन्होंने इसके लिए अपनी पूँजी लगाई। उन्होंने

एक ओर जहाँ बड़ी-बड़ी व्यापारिक कम्पनियाँ स्थापित कीं, वहाँ दूसरी ओर रेलों का जाल बिछाया, और लम्बी-लम्बी सड़कें भी बनाईं। परिणामतः कुछ ही वर्षों में भारत एक अच्छे बाज़ार के रूप में परिणत हो गया। बड़े-बड़े व्यापारी हृदय खोलकर व्यापार में अपना रुपया लगाने लगे। राजा, रईसों, ताल्लुकेदारों और राजाओं का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ। वे भी लाभ देखकर बड़ी-बड़ी कम्पनियों को अपना सहयोग प्रदान करने लगे। एक नई हल-चल—एक नया जीवन देश में पैदा हो गया। इस नई हलचल ने देश की जनता को दो वर्गों में विभक्त कर दिया। एक वर्ग में वे लोग थे, जिनके पास पूँजी थी, और जो मालिक के पद पर प्रतिष्ठित थे, और दूसरे वर्ग में वे लोग थे, जो या तो नौकरी करते थे या जो खेती और मज़दूरी के द्वारा अपना पेट पालते थे। यद्यपि इस नई हलचल से ग़रीबों, किसानों और मज़दूरों का कुछ भी कल्याण न हुआ, पर यह तो सत्य ही है, कि जीवन की एक शृंखलित धारा बह उठी, जिसका पहले नितान्त अभाव था।

व्यापार के क्षेत्र में ही नहीं, शिक्षा के क्षेत्र में भी अंग्रेजों के द्वारा परिवर्तन हुआ। अँग्रेजों ने भारत पर आधिपत्य जमाने के साथ ही साथ अंग्रेजी भाषा का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने स्कूलों, कालेजों, और विश्वविद्यालयों की भी स्थापना की। शिक्षा के पाठ्यक्रम में उन्होंने विज्ञान को भी मुख्य रूप से स्थान दिया। शिक्षा के माध्यम की भाषा अँग्रेजी बनाई गई। शासन के सारे राज-काज में अँग्रेजी को प्रमुखता दी जाने लगी; परिणामतः लोग अंग्रेजी के पठन-पाठन की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए। अँग्रेजी के पठन-पाठन ने जहाँ एक ओर विदेशी संस्कृति के प्रचार में योग प्रदान किया, वहाँ विज्ञान की नई चेतना को फैलाने में मदद की। अँग्रेजी साहित्य के द्वारा लोगों को स्वतन्त्रता और उसके महत्त्व को नए सिरे से जानने में सहायता भी मिली। रूढ़ियों, और अंधविश्वासों पर प्रहार करने का

प्रोत्साहन भी अँग्रेजी साहित्य ने ही प्रदान किया। अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य ने समाज में एक नया आलोक पैदा किया—इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

अंग्रेजी शिक्षा ने देश में ऐसे मनीषियों, विचारकों और नेताओं को जन्म दिया, जो देश की स्थिति से असंतुष्ट होकर अपने-अपने ढंग से देश-सेवा सम्बन्धी कामों में योग प्रदान करने लगे। देश की सेवा करने के लिए राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं की स्थापना भी की गई। काँग्रेस और आर्य समाज आदि संस्थाओं ने सामने आकर नए युग की सृष्टि की। बंगाल में 'ब्रह्म समाज' ने अज्ञानता के अन्धकार को दूर करने में योग प्रदान किया। राजा राममोहन राय आदि ने नए ज्ञान को ओर समाज को आकर्षित किया। स्वामी दयानन्द और उनके आर्य समाज ने समाज की रगों में नई चेतना का संचार किया। बाल गंगाधर तिलक, मदनमोहन मालवीय और महात्मा गाँधी ने देश का पर्दा ही बदल दिया। इनके प्रयत्नों से जीवन के प्रत्येक-क्षेत्र में अज्ञानता, और कुरीतियों के विरुद्ध विद्रोह की भावनाएँ जाग उठीं। स्वतन्त्रता के आन्दोलनों ने विशृंखलित समाज को एक सूत्र में गूँथा। लोग सदियों की आपस की भिन्नताओं को तोड़ कर एक सूत्र में बँध गए, और क़दम-से-क़दम मिलाकर उन्नति की राह पर चलने लगे।

साहित्य पर प्रभाव—इस नए युग और जीवन का साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी भाषा, और विज्ञान के सहयोग से हिन्दी साहित्य में 'गद्य' की सृष्टि हुई। अभी तक हिन्दी में जो साहित्य लिखा गया था, वह पद्य में ही था। यद्यपि 'भक्तिकाल' और 'रीतिकाल' में कुछ लोगों की प्रवृत्ति 'गद्य' की ओर गई थी और उन्होंने कुछ गद्य-रचना भी की, पर उनकी गद्य-रचना भी पद्य के ढंग की है। इसलिए उसे गद्य कहना ठीक न होगा। वास्तविक गद्य की नींव तो आधुनिक काल में ही पड़ी है, और आधुनिक काल में ही

उसका सर्वांगीन विकास भी हुआ है। *नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, जीवनी, संस्मरण, आलोचना,* और एकांकी आदि साहित्य के भिन्न-भिन्न अंगों की रचना आधुनिक काल में ही गद्य में हुई है। यही कारण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने आधुनिक काल को 'गद्य-काल' की संज्ञा दी है। पर इसका यह मतलब नहीं है, कि आधुनिक काल में पद्य की रचना नहीं हुई। गद्य की ही भाँति पद्य के क्षेत्र में भी आधुनिक काल में नवीनताओं को जन्म दिया गया है। गद्य और पद्य दोनों के विकास और उन्नति की दृष्टि से आधुनिक काल अधिक महत्त्वपूर्ण है।

आधुनिक-काल : गद्य

पुराना गद्य पाँच रूपों में मिलता है—राजस्थानी गद्य, मैथिली गद्य, ब्रज भाषा का गद्य, दक्खिनी गद्य, और खड़ी बोली का गद्य।

दान-पत्र, पट्टे, परवाने, और जैनियों के उपदेशों के रूप में राजस्थानी गद्य मिलता है। अचलदास और राठौर रतनसिंह आदि ने राजस्थानी गद्य में कुछ रचनाएँ भी की हैं। गुरु गोरखनाथ रचित 'गोरख सार' में ब्रज भाषा गद्य का स्वरूप देखने को मिलता है। कृष्ण सम्प्रदाय के भक्तों ने भी ब्रज भाषा गद्य में रचनाएँ की हैं। महाप्रभु वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, वैकुण्ठमणि शुक्ला, और लाला हीरालाल आदि ने ब्रज भाषा गद्य के सर्वोत्तम नमूने उपस्थित किए हैं। ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने मैथिली गद्य के ऐसे स्वरूप उपस्थित किए हैं, जिनमें आलंकारिक शैली मिलती है। दक्खिनी गद्य की दृष्टि से मौलाना वजही का नाम उल्लेखनीय है।

आधुनिक-काल का गद्य खड़ी बोली में है। खड़ी बोली दिल्ली और मेरठ के आस-पास की भाषा थी। मुसलमानों के आने पर अरबी-फारसी के शब्द भी खडी बोली में मिल गए। कुछ दिनों के बाद खड़ी बोली का अरबी-फारसी मिश्रित स्वरूप उर्दू के नाम से अभिहित किया जाने लगा। पर खड़ी बोली का वास्तविक स्वरूप भी विकसित होता रहा। उसके विकास में संस्कृत ने अधिक योग प्रदान किया। खड़ी-बोली का यही वास्तविक स्वरूप हिन्दी की वह खड़ी बोली है, जिसमें आधुनिक गद्य का विकास हुआ है।

खड़ी बोली बहुत पुरानी है। बहुत पहले से खड़ी बोली का प्रयोग भी हो रहा है। कबीर की रचनाओं में कहीं-कहीं खड़ी बोली भी मिलती है। भूषण पर भी खड़ी बोली का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

गद्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम खड़ी बोली कवि गंग के "चन्द छन्द वर्णन" में व्यवहृत हुई है। किन्तु लोग इस ग्रंथ को प्रामाणिक नहीं मानते। लोगों का कथन है, सर्वप्रथम रामप्रसाद निरंजनी ने १७४१ में खड़ी बोली में 'भाषा योग वशिष्ट' की रचना की। इसके पश्चात् १७६१ ई० में पं० दौलतराम ने 'पद्म पुराण' का अनुवाद खड़ी बोली के गद्य में किया।

खड़ी बोली का प्राचीन गद्य—नप्राची गद्य के स्वरूप-गठन और निर्माण में मुंशी सदासुखलाल, इंशा अल्लाखाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र ने विशेष योग प्रदान किया है।

मुंशी सदासुखलाल दिल्ली के निवासी थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी में महत्त्वपूर्ण पद पर नियुक्त थे। इन्होंने 'सुख सागर' की रचना की है। इनका जन्म-काल सं० १८०६ और मृत्युकाल संवत् १८८१ है।

इंशा अल्लाखाँ का जन्म मुर्शिदाबाद में हुआ था। पर इन्होंने दिल्ली और लखनऊ में रह कर अपने जीवन के दिन व्यतीत किए हैं। इन्होंने 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की है।

लल्लूलाल आगरे के निवासी गुजराती ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत् १८२० और मृत्यु संवत् १८८२ में हुई थी। इन्होंने 'प्रेम सागर' की रचना की है।

सदल मिश्र बिहार के निवासी थे। 'नासिकेतोपाख्यान' इनकी सुप्रसिद्ध गद्य-रचना है।

खड़ी बोली का गद्य विकास के पथ पर—ऊपर जिस गद्य की चर्चा गई है, उसे हम खड़ी बोली के गद्य का प्राचीन स्वरूप कह सकते हैं।

उससे केवल इतनी ही बात का पता चलता है, कि खड़ी बोली के गद्य की नींव संवत् १८६० के आस-पास पड़ चुकी थी। पर उसके बाद लगभग ५० वर्षों तक गद्य में कोई ऐसी रचना न हुई, जिससे यह कहा जा सके, कि गद्य का विकास धीरे-धीरे हो रहा था। संवत् १८८१ में जटमल ने 'गोरा बादल की कथा' की रचना की। पर हम उसे एक क्षीण प्रयास ही मानेंगे। संवत् १९०० के आस-पास ईसाई धर्म प्रचारकों ने इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। उन्होंने जनता में अपने धर्म का प्रचार करने के लिये गद्य को अपनाया। उन्होंने अपने गद्य की भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों को हटा कर ऐसे शब्दों को स्थान दिया, जो या तो संस्कृत के थे, या ग्रामीण जनता में बहुत दिनों से बोले जा रहे थे।

अँगरेजी शिक्षा के प्रचार के लिये कई स्थानों में स्कूलों और कालजों की स्थापना की गई। इनमें अँगरेजी के साथ ही हिन्दी की शिक्षा के लिए भी व्यवस्था की गई। परिणामस्वरूप सरल गद्य की पुस्तकों की आवश्यकता हुई। ईसाई मिश्नरियों, और सरकार ने प्रेसों की स्थापना की। ईसाई मिश्नरियाँ छोटी-छोटी गद्यात्मक पुस्तकें प्रकाशित करने लगीं। यद्यपि ये पुस्तकें प्रचार की दृष्टि से लिखी गई थीं, पर इनसे हिन्दी गद्य के प्रचार में विशेष सहायता मिली।

संवत् १८७२ में राजा राममोहन राय ने 'वेदान्त सूत्रों' का अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित किया। इन्हीं दिनों स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना की। एक ओर आर्य समाज ने हिन्दी के प्रचार पर बल दिया, और दूसरी ओर 'सत्यार्थ प्रकाश' के द्वारा हिन्दी गद्य के विकास में अधिक सहायता मिली। संवत् १८८३ में कानपुर से 'उदन्त मार्तण्ड' प्रकाशित हुआ जो हिन्दी का पहला समाचार-पत्र था। पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भी हिन्दी और उसके गद्य के प्रचार और प्रसार में अधिक योग प्रदान किया। संवत् १९०२ में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने 'बनारस अखबार' निकाला। यद्यपि इसकी भाषा

उर्दू थी, पर लिपि 'देवनागरी' ही थी। संवत् १९०७ में 'सुधाकर' और १९०९ में आगरे से 'बुद्धिप्रकाश' प्रकाशित हुआ। इन दोनों पत्रों ने भी हिन्दी और उसके गद्य के प्रचार में अधिक सहायता प्रदान की।

इस प्रकार हिन्दी गद्य धीरे-धीरे विकास के मार्ग पर अग्रसर होने लगा। हिन्दी को विकास के पथ पर अग्रसर होते हुए देखकर उर्दू के पक्षपातियों ने हिन्दी का विरोध भी करना प्रारंभ कर दिया। पर फिर भी हिन्दी दिनोंदिन विकास के मार्ग पर आगे बढ़ती ही गई। इसका मुख्य कारण यह था, कि हिन्दी के विकास में जनता की भावनाएँ थीं। यह सत्य है, कि हिन्दी को शासन की ओर से आश्रय प्राप्त न था, पर यह भी सत्य है, कि उसके साथ जनता की अखंड शक्ति थी। अतः बड़े से बड़ा विरोध भी हिन्दी और उसके गद्य की प्रगति को रोक न सका।

इस विरोध-काल में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, और राजा लक्ष्मणसिंह चौहान ने हिन्दी की जो सेवाएँ कीं, वे बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द पहले शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती थे। जिन दिनों उर्दू के पक्षपाती हिन्दी को राज-काज से दूर रखने के लिए आन्दोलन कर रहे थे, उन्हीं दिनों वे शिक्षा-विभाग में इन्सपेक्टर के पद पर प्रतिष्ठित किए गए। इन्सपेक्टर के पद पर प्रतिष्ठित होने पर उन्होंने हिन्दी के एक नए स्वरूप को प्रस्तुत किया। इस नए स्वरूप में हिन्दी के साथ ही साथ 'उर्दू' के भी शब्द थे। उन्होंने 'राजा भोज का सपना' और 'मानव धर्म सार' आदि पुस्तकों की रचना की।

राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद के नए स्वरूप से 'हिन्दुस्तानी' की सृष्टि अवश्य हुई, पर उसे देख कर हिंदी के विरोधियों का स्वर मन्द पड़ गया। प्रचार की दृष्टि से हिन्दी के लिए यह एक बहुत बड़ा लाभ था।

राजा लक्ष्मणसिंह चौहान ने एक दूसरे स्वरूप को सामने उप-स्थित किया, जो 'सितारेहिंद' के स्वरूप का बिलकुल उल्टा था। 'सितारेहिंद' के स्वरूप में जहाँ हिंदी के साथ-ही-साथ उर्दू के भी शब्द थे, वहाँ लक्ष्मणसिंह जी ने अपनी भाषा के स्वरूप का गठन शुद्ध और सरल हिंदी शब्दों के द्वारा किया। उन्होंने अपनी भाषा को अरबी-फारसी के शब्दों से पूर्णतः दूर ही रखा था। 'रघुवंश', 'मेघदूत' और 'अभिज्ञान शाकुन्तल' इत्यादि संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद उन्होंने अपनी इसी भाषा में किया।

इस प्रकार हिंदी गद्य की दो शैलियाँ उद्भूत हुई। एक 'सितारे हिंद' की शैली, जिसमें हिंदी के साथ-ही-साथ अरबी और फारसी के भी शब्द थे, और दूसरी लक्ष्मणसिंह चौहान की शैली, जो सरल होते हुए भी संस्कृतनिष्ठ थी।

आधुनिक हिन्दी-गद्य—आधुनिक हिंदी-गद्य और उसके विकास-क्रम को ठीक-ठीक समझने के लिए हम उसे तीन भागों में विभक्त करते हैं—प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान, और तृतीय उत्थान। इन्हीं भागों को कुछ लोगों ने भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, और प्रेमचन्द युग के नाम से भी अभिहित किया है।

प्रथम उत्थान में गद्य और पद्य के क्षेत्र में नई दिशा का उद्-घाटन किया गया। भाषा, शैली, और भाव के क्षेत्र में नई प्रणालियाँ अपनाई गई। अभी तक गद्य के क्षेत्र में भक्ति और शृंगारिक विषयों पर ही रचनाएँ होती रही हैं। ब्रज भाषा ही सबकी भाषा थी। पर प्रथम उत्थान में राष्ट्रीय और समाज सुधार संबंधी रचनाएँ भी होने लगीं। ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, भक्ति और शृंगारिक रचना की धारा मन्द पड़ने लगी, और उसके स्थान पर देश, तथा समाज संबंधी नई-नई रचनाएँ होने लगीं।

अभी तक काव्य की भाषा व्रज भाषा थी, पर प्रथम उत्थान में खड़ी बोली में भी रचनाएँ होने लगीं। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होने लगा, व्रज भाषा का प्रवाह मन्द पड़ने लगा, और उसके स्थान पर खड़ी बोली अपना आधिपत्य स्थापित करने लगी।

यह सत्य है, कि प्रथम उत्थान के पूर्व हिंदी गद्य अपने स्वरूप में आ चुका था, पर आधुनिक गद्य की नींव प्रथम उत्थान में ही पड़ी। नींव ही नहीं पड़ी, वरन् उसमें नाटक, उपन्यास, कहानी, और गद्य-काव्य इत्यादि साहित्य के विभिन्न अंगों की रचना भी की गई।

प्रथम उत्थान की नींव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के द्वारा पड़ी है। सर्वप्रथम उन्होंने ही आधुनिक गद्य के स्वरूप को सामने उपस्थित किया। इसीलिए लोग उन्हें आधुनिक गद्य का जन्मदाता भी मानते हैं। उन्होंने गद्य में नाटक, उपन्यास, और निबंध आदि साहित्य के विभिन्न अंगों पर पुस्तकों की रचना की। उनकी पुस्तकों से जहाँ नए-नए विषयों पर साहित्य-रचना के लिए प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, वहाँ भाषा और शैली भी अधिक परिमार्जित हुई।

प्रथम उत्थान में ही हिन्दी साहित्य में नाटक और उपन्यास की रचना प्रारंभ हुई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने स्वयं कई मौलिक नाटकों की रचना की। मौलिक के साथ-ही-साथ उन्होंने बंगला के कई नाटकों का अनुवाद भी किया। नाट्य-साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिए उन्होंने रंग-मंच की भी स्थापना की। उन्होंने पत्र-पत्रिकाएँ भी निकालीं, जिनमें निबन्ध के रूप में नाट्य-साहित्य की उपयोगिताओं पर प्रकाश भी डाला गया।

भारतेन्दु जी ने भाषा, शैली, और भाव के क्षेत्र में जिस नए आदर्श को स्थापना की, उसका पालन उनके सहयोगियों ने बड़े मनोयोग के साथ किया। परिणामतः भारतेन्दु द्वारा लगाया हुआ हिन्दी-गद्य का पौधा पल्लवित और पुष्पित होने लगा। साहित्य के विभिन्न अंगों

पर रचनाएँ होने के साथ-ही-साथ भाषा और शैली भी अधिकाधिक परिमार्जित तथा प्रौढ़ होने लगी।

भारतेन्दु जी के जिन सहयोगियों ने आधुनिक गद्य के विकास में योग प्रदान किया, इनमें पंडित प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह और बालकृष्ण भट्ट आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन लेखकों ने देश-प्रेम, समाज-सुधार, और हास्य-विनोद संबंधी रचनाएँ की हैं, जो विकास की दृष्टि से अधिक महत्त्व-पूर्ण हैं।

प्रथम उत्थान के लेखक—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जन्म संवत् १९०७ में काशी में एक वैश्य कुटुम्ब में हुआ था। संवत् १९२२ में उन्होंने जगन्नाथ जी और बंगाल की यात्रा की। बंगाल की यात्रा में उन पर बँगला साहित्य का प्रभाव पड़ा। उन्होंने यात्रा से लौटकर, 'विद्या सुन्दर'का अनुवाद किया। 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मेगज़ीन' और 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिकाएँ भी उन्होंने निकालीं। इन पत्र-पत्रिकाओं ने तत्कालीन लेखकों को प्रोत्साहन प्रदान किया; और उनके भीतर साहित्य रचना की प्रवृत्ति उत्पन्न की। इनके द्वारा भाषा और शैली के विकास में भी अधिक सहायताएँ मिलीं।

भारतेन्दु जी ने गद्य और पद्य—दोनों में ही साहित्य की रचना की। गद्य के क्षेत्र में उन्होंने 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'अन्धेर नगरी', 'नीलदेवी', और 'प्रेमयोगिनी' आदि मौलिक नाटकों की रचना की। बँगला के नाटकों का अनुवाद भी उन्होंने किया।

नाट्यकला के क्षेत्र में उन्होंने अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति का परिचय दिया। उन्होंने न तो उस शैली को ग्रहण किया, जो प्राचीन काल से भारतीय नाट्य साहित्य में व्यवहृत होती चली आ रही थी, और न बँगला के नाटकों की ही शैली को ग्रहण किया। इसके विपरीत उन्होंने एक नए मार्ग का उद्घाटन किया। उनके नए मार्ग पर अंग-रेजी के नाटकों का प्रभाव है।

विषय, पात्र, और चरित्र की दृष्टि से भी भारतेन्दु जी के नाटक बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। उनके नाटकों ने जहाँ विषयों का विस्तार किया है, वहाँ नए-नए पात्रों और चरित्रों की ओर लोगों के ध्यान को आकर्षित किया है। भारतेन्दु जी के नाटकों के बाद ही विषयों का विस्तार हुआ, और देश, समाज, धर्म, तथा इतिहास से नए-नए चरित्रों को लेकर साहित्य की रचना होने लगी।

निबंध-साहित्य को भी भारतेन्दु बाबू के द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उन्होंने स्वयं तो निबन्धों की रचना की ही, अपने सहयोगियों को भी निबंध-रचना के लिए प्रोत्साहित किया।

पद्य के क्षेत्र में भारतेन्दु जी ने व्रज भाषा और खड़ी बोली—दोनों में ही रचनाएँ की हैं। उनकी व्रज भाषा बड़ी सरल है। उनकी खड़ी बोली की रचनाओं में सर्व-प्रथम स्वदेश-प्रेम और समाज-सुधार संबंधी विषयों के दर्शन होते हैं।

अल्पायु में ही संवत् १९५१ में उनका स्वर्गवास हो गया।

प्रतापनारायण मिश्र का जन्म संवत् १९१३ में हुआ था। उन्होंने भारतेन्दु जी की ही शैली ग्रहण की है। उनकी शैली हास्य और विनोद से परिपूर्ण है। उन्होंने हठी हम्मीर, कलि कौतुक आदि पुस्तकों की रचना की है। स्फुट विषयों पर उन्होंने निबंध भी लिखे हैं, जो देश और समाज-सुधार से सम्बन्धित हैं।

बालकृष्ण भट्ट का जन्म संवत् १९०१ में प्रयाग में हुआ था। उन्होंने भावात्मक और विवेचनात्मक शैली में साहित्यिक, राजनैतिक और नैतिक निबंधों की रचना की है।

गद्य-काव्य की प्रवृत्ति की झलक भी सर्वप्रथम इन्हीं के निबंधों में मिलती है।

बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' मिर्जापुर के निवासी थे। उनकी गद्य रचना में कलात्मकता का प्रचुर अंश है। अनुप्रास और अलंकृत पदविन्यासों के द्वारा उन्होंने अपनी रचनाओं को सुसज्जित किया है।

लाला श्रीनिवासदास का जन्म संवत् १६०८ में हुआ था। उन्होंने प्रह्लाद चरित्र, संयोगिता स्वयम्वर, तप्तासंवरण, और परीक्षागुरु इत्यादि नाटकों की रचना की है।

तोताराम, केशवराम भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास, विष्णुलाल पंड्या, पंडित भीमसेन शर्मा, काशीनाथ शास्त्री, राधा कृष्णदास, और कार्तिकप्रसाद खत्री आदि ने भी प्रथम उत्थान के विकास में महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया है।

द्वितीय उत्थान—प्रथम उत्थान में विषयों का क्षेत्र सीमित था। धार्मिक और सामाजिक विषयों पर ही अधिकांश रचनाएँ हुईं। भाषा में विकास के लक्षण अवश्य प्रगट होने लगे थे, पर व्याकरण की दृष्टि से वह दोष-युक्त थी। विराम आदि चिह्नों के प्रयोग में भी लोग असावधानी बरतते थे। शब्दों की भी कमी थी। शैली का क्षेत्र भी बहुत ही सीमित था। सभी लेखकों की रचनाओं में प्राय: एक ही दो शैलियों का अनुगमन मिलता है।

द्वितीय उत्थान में विषय, भाव, और शैली के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। शिक्षा के प्रचार और सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के कारण नए-नए विषयों पर रचनाएँ होने लगीं। नए-नए विषयों के साथ-ही-साथ नई-नई समस्याओं और विचारों का भी मिश्रण होने लगा। समाज और धर्म के अतिरिक्त विज्ञान, पुरातत्त्व, इतिहास, राजनीति, और दर्शन आदि विषयों को ले कर साहित्य के भिन्न-भिन्न अंगों की रचना होने लगी। नए-नए पत्र और पत्रिकाएँ भी निकलने लगीं। नाटक, कहानी, उपन्यास, समालोचना, और निबंधों के क्षेत्र में नई-नई शैलियों ने जन्म लिया।

प्रथम उत्थान में भाषा में जो त्रुटियाँ थीं, द्वितीय उत्थान में उन्हें दूर किया गया। भाषा परिमार्जित हुई, और व्याकरण की दृष्टि से उसे शुद्ध बनाया गया। भाषा में नए-नए शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-ही-साथ तद्भव, और देशज शब्द भी व्यवहृत किए जाने लगे। शैली के क्षेत्र को भी विस्तृत बनाया गया। भावात्मक, विवेचनात्मक, और गवेषणात्मक इत्यादि शैलियों का जन्म और विकास द्वितीय उत्थान में ही हुआ।

द्वितीय उत्थान के लेखक—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी का जन्म संवत् १९२७ में हुआ था। हिन्दी-गद्य में महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन का श्रेय द्विवेदी जी को ही है। द्विवेदी जी ने एक ओर भाषा की त्रुटियों को दूर किया, और दूसरी ओर उसे अधिक शक्तिशाली बनाया। उन्होंने 'सरस्वती' के संपादक के रूप में परिमार्जित और विशुद्ध भाषा का स्वरूप भी उपस्थित किया। नई-नई शैलियों में निबंधों की रचना की। विभिन्न विषयों पर निबंध और पुस्तकों की रचना करके यह प्रगट किया, कि हिन्दी एक सक्षम भाषा है, और उसमें सभी प्रकार के विचारों को प्रगट करने की शक्ति है।

मौलिक के साथ-ही-साथ उन्होंने संस्कृत और अंगरेज़ी के महत्त्व-पूर्ण ग्रंथों के अनुवाद भी किए।

माधवप्रसाद मिश्र ने ओजस्वी शैली में भारतीय संस्कृति पर निबंधों की रचना की। 'सुदर्शन' नामक एक पत्र भी उन्होंने प्रकाशित किया था।

बालमुकुन्द गुप्त रोहतक के निवासी थे। हिन्दी के साथ-ही-साथ उर्दू पर भी उनका आधिपत्य था। उन्होंने विनोदपूर्ण और चटपटी भाषा में निबंधों की रचना की। उनका 'शिव शंभु का चिट्ठा' अधिक प्रसिद्ध है।

'भारत मित्र' और 'बंग वासी' आदि पत्रों का संपादन भी उन्होंने किया था।

श्यामसुन्दरदास जी का जन्म संवत् १६३२ में हुआ था। उन्होंने 'नागरी प्रचारिणी सभा' के माध्यम से विभिन्न विषयों पर पुस्तकों की रचना की। 'भाषा विज्ञान', 'हिंदी भाषा का साहित्य', और 'साहित्यालोचन' आदि पुस्तकों की रचना करके उन्होंने आलोचना साहित्य में जीवन का संचार किया। नवीन शैलियों के स्वरूप गठन और विकास में भी उन्होंने योग प्रदान किया है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का जन्म संवत् १६४० में हुआ था। वे संस्कृत और अंग्रेजी के विद्वान् थे। उन्होंने यद्यपि तीन निबंध, और तीन कहानियों की ही रचना की है, पर इन्हीं से वे हिन्दी साहित्य में अमर बन गए हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का जन्म संवत् १६०१ में हुआ था। समालोचना और निबन्ध रचना के क्षेत्र में शुक्ल जी की सेवाएँ अपूर्व हैं। मनोवैज्ञानिक निबंधों की रचना शुक्ल जी के द्वारा ही सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य में हुई। इसी प्रकार आलोचना जगत् में भी उन्होंने व्याख्यात्मक, और निर्णयात्मक शैलियों की महत्त्वपूर्ण सृष्टि की।

शुक्ल जी ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। उनका 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

प्रो० पूर्णसिंह, पंडित गोविन्दनारायण मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, मिश्र बंधु, पद्मसिंह शर्मा, और लाला भगवानदीन आदि लेखकों ने भी द्वितीय उत्थान के विकास में महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया है।

तृतीय उत्थान में हिन्दी साहित्य की पूर्ण उन्नति हुई है। इस काल विशेष में जिस साहित्य की रचना हुई है, उस में ऐसा भी साहित्य, है जो विश्व-साहित्य में स्थान पाने योग्य है। इस क ।

नए-नए प्रतिभाशाली लेखकों का प्रादुर्भाव हुआ है। इन लेखकों ने ऐसी रचनाएँ भी उपस्थित की हैं, जिनका अनुवाद विश्व की कई उन्नत भाषाओं में हुआ है। इस काल में जहाँ विभिन्न विषयों पर साहित्य रचना हुई है, वहाँ विभिन्न शैलियों का निर्माण भी किया गया है। नए-नए शब्दों की सृष्टि भी की गई है, जिसमें भाषा अधिक व्यापक और शक्तिशाली हुई है।

इस काल में गद्य के साथ-ही-साथ पद्य के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं। छायावाद, रहस्यवाद, और प्रयोगवाद आदि काव्य की नई शैलियों का जन्म इसी काल में हुआ है।

तृतीय उत्थान के लेखकों में प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, वृन्दावन लाल वर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्रकुमार, नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० नगेन्द्र, गुलाब राय, शान्ति प्रिय द्विवेदी, डा० संपूर्णानन्द, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, राहुल सांकृत्यायन, वियोगी हरि, परशुराम चतुर्वेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, अंबिकादत्त व्यास, सेठ गोविन्ददास, और श्रीराम शर्मा आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इन लेखकों के अतिरिक्त और भी कितने ऐसे लेखक हैं, जो अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओं के द्वारा तृतीय उत्थान के विकास में संलग्न हैं।

विभिन्न अंगों की दृष्टि से गद्य-साहित्य का विकास—नाटक— हिन्दी साहित्य में नाट्य-साहित्य का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को ही है। उनके पूर्व भी कुछ नाटक लिखे गए हैं। जैसे:—देव का 'देव माया प्रपंच', ब्रजवासीदास का 'प्रबन्ध चन्द्रोदय', बनारसी दास का 'समय सार', और नेवाज़ का 'शकुन्तला नाटक'। पर ये सभी नाटक पद्य में हैं। इसलिए नाट्य साहित्य में इनका कोई स्थान नहीं है। भारतेन्दु के पूर्व उनके पिताने 'नहुष' की रचना की थी। 'नहुष' को हिन्दी का प्रथम नाटक कहा जा सकता है।

भारतेन्दु जी के नाटकों में ही उस कला का जन्म हुआ है, जिसे हम आधुनिक नाट्य कला कहते हैं। भारतेन्दु जी के नाटक दो प्रकार के हैं—अनूदित और मौलिक। अनूदित नाटकों में 'विद्या सुन्दर' का मुख्य स्थान है। उनके मौलिक नाटकों की संख्या १४ है। जिनमें 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली', 'भारत दुर्दशा', और 'प्रेमयोगिनी' आदि अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

भारतेन्दु के समकालीन लेखकों में श्रीनिवास दास, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, और राधाकृष्ण दास, आदि ने भी नाट्य साहित्य की रचना की है।

द्वितीय उत्थान में लोगों का ध्यान अनूदित नाटकों की ही ओर विशेष रूप से रहा है। रामकृष्ण वर्मा और रूपनारायण पाण्डेय ने बँगला के सुप्रसिद्ध नाटकार द्विजेन्द्र लाल राय के नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किए। इसी प्रकार लाला सीताराम बी० ए०, और कविरत्न सत्यनारायण जी ने संस्कृत के कई महत्त्वपूर्ण नाटकों के अनुवाद किए।

मौलिक नाटकों की रचना द्वितीय उत्थान में बहुत कम हुई। अयोध्यासिंह उपाध्याय, और बलदेवप्रसाद मिश्र ने इस दिशा में प्रयास किए, पर उन्हें अधिक सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है।

राधेश्याम कथावाचक, हरिकृष्ण जौहरी, और नारायण प्रसाद 'बेताब' ने थियेट्रिकल कम्पनियों में खेले जाने योग्य नाटकों की रचना इसी युग में की।

नाट्यकला के विकास की दृष्टि से तृतीय उत्थान का युग अधिक महत्त्वपूर्ण है। तृतीय उत्थान में जयशंकर प्रसाद जी ने ऐतिहासिक, और सांस्कृतिक कथाओं के आधार पर महत्त्वपूर्ण नाटकों की रचना की। उनके 'करुणालय', 'अजातशत्रु', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्द गुप्त', और 'कामना' आदि सुप्रसिद्ध नाटक हैं।

प्रसाद जी के पश्चात् हरिकृष्ण प्रेमी, और उदयशंकर भट्ट ने नाटकों की रचना में सुकीर्ति प्राप्त की है। हरिकृष्ण प्रेमी का 'रक्षा बंधन' नाटक अधिक प्रसिद्ध है। भट्ट जी ने सगर विजय, अंबा, मत्स्य-गंधा, और विश्वामित्र आदि नाटकों की रचना की है।

पंडित बेचन शर्मा उग्र, माखनलाल चतुर्वेदी, पं० गोविन्दवल्लभ पंत, और जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के नाटक भी अधिक प्रसिद्ध हैं। जी० पी० श्रीवास्तव ने हास्यरसात्मक नाटकों की रचना की है।

अंग्रेजी ढंग के आधुनिक नाटकों की रचना में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सेठ गोविन्ददास के नाटकों में भी आधुनिक नाट्यकला विकसित हुई है।

एकांकी नाटकों की सृष्टि भारतेन्दु काल में आरम्भ हुई। 'भारत दुर्दशा,' 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', और 'अंधेर नगरी' आदि भारतेन्दु जी के ऐसे नाटक हैं, जिन्हें एकांकी के ही अन्तर्गत लिया जा सकता है। प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, श्रीनिवासदास, और राधाचरण गोस्वामी आदि ने भी ऐसे नाटकों की रचना की है, जिनकी गणना एकांकी के स्वरूपों के अंतर्गत की जा सकती है।

परन्तु आधुनिक एकांकी कला का जन्म तृतीय उत्थान में ही हुआ है। भुवनेश्वर हिन्दी के प्रथम एकांकीकार हैं। भुवनेश्वर के पश्चात् डा० रामकुमार वर्मा, श्री उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, गणेश प्रसाद द्विवेदी, सद्गुरुशरण अवस्थी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, वृन्दावन लाल वर्मा, गोविन्द वल्लभ पंत, और गोविन्ददास सेठ आदि ने एकांकी रचना में महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया है।

उपन्यास गद्य साहित्य का मुख्य अंग है। उपन्यास में जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों पर प्रकाश डाला जाता है। साथ ही उसमें जीवन पूर्ण रूप से भी प्रतिबिंबित होता है। उपन्यास आधुनिक युग की

महत्त्वपूर्ण देन है। हिन्दी का उपन्यास साहित्य बँगला और अंग्रेजी से पूर्ण रूप से प्रभावित है। तृतीय उत्थान के उपन्यासों की स्वतंत्र और मौलिक प्रवृत्तियों का विकास प्रशंसनीय ढंग से हुआ है।

हिन्दी में उपन्यास साहित्य की नींव प्रथम उत्थान में ही पड़ी थी। प्रथम उत्थान में लाला श्रीनिवासदास ने 'परीक्षा गुरु' की रचना की। बालकृष्ण भट्ट और राधकृष्णदास ने भी मौलिक उपन्यास लिखे हैं। इसी युग के राधाचरण गोस्वामी, कार्तिकप्रसाद खत्री, गदाधरसिंह, और प्रतापनारायण मिश्र ने अनूदित रचनाएँ भी उपस्थित कीं।

द्वितीय उत्थान में मौलिक और अनूदित—दोनों ही प्रकार के उपन्यास लिखे गए। मौलिक उपन्यासकारों में देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जारम मेहता, ब्रजनन्दन सहाय, और अयोध्या सिंह आदि का नाम उल्लेखनीय है।

गोपालराम गहमरी, श्री उदितनारायण, ईश्वरी प्रसाद, और पंडित रूपनारायण पाण्डेय आदि ने अनूदित रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।

तृतीय उत्थान में उपन्यास साहित्य की महत्त्वपूर्ण उन्नति हुई है। इस युग के उपन्यास भी दो प्रकार के हैं—अनूदित और मौलिक। अनूदित उपन्यासों में वे कृतियाँ हैं, जो संसार की उन्नत भाषाओं में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती हैं।

मौलिक उपन्यासकारों में प्रमचन्द जी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने सेवासदन, रंगभूमि, गोदान, गबन, और कर्मभूमि आदि महत्त्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की है।

जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों में नई भावनाओं का उन्मेष हुआ है। 'कंकाल,' और 'तितली' उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। विश्वम्भर नाथ शर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीचरण वर्मा, चतुरसेन

शास्त्री, जैनेन्द्र, राधिकारमणसिंह, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और पाण्डेय बेचन शर्मा आदि ने भी श्रेष्ठ उपन्यासों की रचना की है।

वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना में महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त किया है। उनके 'विराटा की पद्मिनी', 'गढ़ कुंडार', 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी' और 'अमर वेल' आदि ऐतिहासिक उप-न्यास अधिक प्रसिद्ध हैं।

इस युग के उपन्यासकारों में यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, गोविन्द वल्लभ पंत, विष्णु प्रभाकर, इलाचन्द्र जोशी, यज्ञदत्त शर्मा, रांगेय राघव, ऊषा देवी मित्रा, नागार्जुन, गुरुदत्त, उपेन्द्रनाथ अश्क, और अमृतलाल नागर आदि का नाम भी महत्त्वपूर्ण है।

कहानी का गद्य साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहानी और मनुष्य का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्य अपने आदिकाल से कहानियाँ कहता और गढ़ता चला आ रहा है। साहित्य के रूप में जो प्राचीन सम्पत्ति मिलती है, वह कथा, और कहानियों में ही है। लोक-कथाओं और नीति कथाओं के रूप में कहानी सर्वत्र बिखरी हुई है। संसार की उन्नत भाषाओं के साहित्य में भी कहानी का इतिहास, साहित्य के दूसरे अंगों की अपेक्षा अधिक प्राचीन है।

हिन्दी साहित्य में भी कहानी बहुत दूर से अपनी लड़ी जोड़ती हुई दिखाई पड़ती है। जटमल की 'गोरा बादल की कथा', लल्लू लाल का 'प्रेम सागर', सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान', इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' आदि ऐसी रचनाएँ हैं, जिनके मूल में कहानी के तत्त्व विद्यमान हैं।

आधुनिक कहानी कला की दृष्टि से किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' हिन्दी की पहली कहानी है। इसके पश्चात् 'बंग महिला' की 'दुलाई वाली' का स्थान है, जिसमें घटनाओं की प्रधानता है।

१९१० ई० में जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' कहानी 'इन्दु' में प्रकाशित हुई। हिन्दी के आलोचक इसी कहानी को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं। 'इन्दु' में ही राजा राधिकारमणसिंह जी की 'कानों में कंगना,' प्रसाद की 'रसिया बालम' और पारसनाथ त्रिपाठी की 'सुख की मौत' आदि कहानियाँ भी प्रकाशित हुईं, जिनमें भावात्मकता के चित्र थे।

१९१५ ई० में गुलेरीजी की 'उसने कहा था' कहानी सामने आई। १९१६ ई० के आस-पास प्रेमचन्द जी कहानी के क्षेत्र में आये, और उन्होंने 'पंच परमेश्वर' की रचना की।

प्रसाद और प्रेमचन्द जी की कहानियों ने दो धाराओं को जन्म दिया। प्रसाद जी की कहानियों ने जिस भाव-धारा का उद्घाटन किया, उसे हम भावात्मक धारा कह सकते हैं। इसी प्रकार प्रेमचन्द जी की कहानियों के द्वारा प्रवर्तित धारा को 'यथार्थवादी धारा' कहना संगत होगा।

प्रसाद जी ने सैंकड़ों भावात्मक कहानियों की रचना की। उनकी कहानियाँ 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'इन्द्रजाल' और 'आँधी' आदि में संग्रहीत हैं।

प्रसाद जी के भावात्मक पथ पर चल कर जिन कहानीकारों ने रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, उनमें राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, चंडी प्रसाद हृदयेश, रामकृष्णदास, और विनोद शंकर व्यास आदि का नाम उल्लेखनीय है।

प्रेमचन्दजी ने लगभग तीन सौ कहानियों की रचना की है, जो 'सप्त सरोज', 'प्रेम पचीसी', और 'प्रेम द्वादशी' इत्यादि में संकलित हैं। उनकी संपूर्ण कहानियाँ 'मान सरोवर' नाम से आठ भागों में प्रकाशित हुई हैं।

प्रेमचन्द जी के यथार्थवादी पथ पर चलकर चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, विश्म्भरनाथ शर्मा. सुदर्शन और ज्वालादत्त शर्मा आदि ने कहानी-साहित्य की रचना की है।

जैनेन्द्र कुमार ने अपनी कहानियों में नई दिशा का उद्घाटन किया है। उनकी मनोवैज्ञानिक कहानियाँ अपने ढंग की अपूर्व हैं। अज्ञेय, और इलाचन्द्र जोशी ने मनोविश्लेषण प्रधान कहानियों की रचना की है। यशपाल की कहानियाँ यथार्थवाद का अंकन करती हैं। उपेन्द्र-नाथ अश्क, राहुल साँकृत्यायन, राँगेय राघव, विष्णु प्रभाकर, अमृत-राय और मोहन सिंह सेंगर आदि इसी भाव-परम्परा के कहानीकार हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की कहानियाँ प्रेमचन्द की यथार्थवादी कहा-नियों की याद दिलाती हैं। इसी प्रकार गोविन्दवल्लभ पंत और मोहनलाल महतो आदि भावात्मक कहानियों की सृष्टि करके प्रसादजी की भावात्मक शैली के पोषण में सलग्न हैं।

जी० पी० श्रीवास्तव, बेढब बनारसी, अन्नपूर्णानन्द, अमृतलाल नागर और जयनाथ नलिन आदि ने हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानियों की रचना की है।

कहानी के नए लेखकों में पहाड़ी, राजेन्द्र यादव, मोहनराकेश, शेखर जोशी, चन्द्र किरण सोनरिक्शा और कमलेश्वर आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

निबन्ध गद्य साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। निबंध में विस्तृत विचारों का स्पष्टीकरण, संक्षेप में, बड़े कौशल के साथ किया जाता है।

'निबंध' का भी जन्म भारतेन्दु काल में ही हुआ। भारतेन्दु-युग में 'उदन्त मार्तण्ड,' 'बनारस अखबार' और 'कविवचन सुधा' आदि पत्र-पत्रिकाओं का जन्म हुआ, जिनमें विभिन्न विषयों पर थोड़े बहुत

निबंधों की रचना की गई। भारतेन्दु-काल के निबंध-लेखकों में बाल कृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, जगमोहन और बद्रीनारायण चौधरी आदि ने निबंध साहित्य की रचना में अधिक योग दिया।

इन निबंधकारों ने राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक निबंधों की रचना की है।

द्वितीय उत्थान में सरस्वती के द्वारा निबंध-साहित्य की रचना में अधिक सहायता प्राप्त हुई। यद्यपि पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं निबंध-साहित्य की रचना नहीं की, पर उन्होंने विदेशी निबंधकारों का अनुवाद प्रस्तुत किया। उन्होंने निबंध-रचना की लोगों में प्रवृत्ति उत्पन्न की और उन्हें प्रोत्साहित भी किया।

द्वितीय उत्थान में बाबू श्यामसुन्दरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पं पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु और गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि की रचनाओं से निबंध-साहित्य का सर्वाधिक विकास हुआ है।

इन निबंधकारों ने आलोचना, मनोविज्ञान, साहित्य, काव्य, नाटक, इतिहास, दर्शन और पुरातत्त्व आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण निबंधों की रचना की। उनके निबंधों में शैली और भाषा के साथ-ही-साथ भावों की गंभीरता भी मिलती है।

तृतीय-उत्थान में निबंध साहित्य की रचना प्रचुर रूप में हुई है। इस युग के निबंधकारों में धीरेन्द्र वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, डा० नगेन्द्र, डा० रघुवीर, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्रीमती महादेवी वर्मा, वियोगी हरि, विनय मोहन शर्मा, नन्ददुलारे वाजपेयी, सियाराम शरण गुप्त, जैनेन्द्रकुमार और शान्तिप्रिय द्विवेदी प्रभृति का महत्त्व-पूर्ण स्थान है।

आलोचना का प्रारम्भ भारतेन्दु-युग से ही हुआ है। भारतेन्दु जी की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में आलोचना साहित्य की प्रवृत्ति मिलती है। 'कविवचन सुधा' में आलोचनात्मक लेख सर्वप्रथम प्रकाशित हुए थे।

बालकृष्ण भट्ट ने अपने 'हिन्दी प्रदीप' में भी आलोचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया था। पं० बद्रीनारायण चौधरी ने 'आनन्द कादम्बिनी' में 'संयोगिता स्वयम्वर' की आलोचना विस्तार के साथ की थी।

द्वितीय-उत्थान में आचार्य द्विवेदी जी के द्वारा आलोचना-साहित्य का अधिक विकास हुआ। उन्होंने 'सरस्वती' में कई लेखकों और उनकी कृतियों की खुलकर आलोचना की। उन्होंने भाषा के दोषों को भी विस्तार के साथ प्रस्तुत किया।

द्वितीय-उत्थान में ही 'मिश्र बंन्धु विनोद', 'हिन्दी नवरत्न' प्रकाशित हुआ। पं. पद्मसिंह शर्मा ने द्वितीय उत्थान में ही 'बिहारी सतसई' पर तुलनात्मक भूमिका लिखी। श्यामसुन्दरदास, कृष्णबिहारी मिश्र, और लाला भगवानदीन के आलोचनात्मक ग्रंथ इसी काल में प्रकाशित हुए।

तृतीय-उत्थान में आलोचना की नई शैलियों का उद्‍घाटन हुआ है। इसका श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी को है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने तुलसी, सूर और जायसी पर विस्तृत आलोचाएँ कीं। उन्होंने तुलनात्मक शैली को जन्म देकर आलोचना के क्षेत्र का विस्तार किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी कबीर की आलोचना 'कबीर वचनावली' में की। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने विश्व-साहित्य की रचना करके यूरोपीय आलोचना के सिद्धान्तों को सामने प्रस्तुत किया।

नन्ददुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी और डा० नगेन्द्र आदि ने शुक्ल जी द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलकर महत्त्वपूर्ण आलोचना-साहित्य की सृष्टि की है।

गुलाबराय, रामकुमार वर्मा, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, डा० सत्येन्द्र, परशुराम चतुर्वेदी, रामनाथ लाल सुमन, गिरिजा दत्त शुक्ल, शान्तिप्रिय द्विवेदी, राम विलास शर्मा,

प्रकाशचन्द्र गुप्त और रामरतन भटनागर आदि ने भी आलोचना-साहित्य को विकास की ओर अग्रसर किया है।

जीवनी साहित्य का निर्माण भक्तिकाल से प्रारम्भ हुआ है। भक्ति-काल में गोस्वामी गोकुलनाथ जी चौरासी वैष्णवों की वार्ता और नाभा दास जी ने 'भक्तमाल' की रचना की।

वास्तविक रूप में जीवनी-साहित्य की रचना भारन्तेदु-युग में ही प्रारम्भ हुई। भारतेन्दु जी ने स्वयं विभिन्न महापुरुषों के जीवन-चरित्र अंकित किये। भारतेन्दु काल के लेखकों ने भी जीवनी-साहित्य निर्माण में योग प्रदान किया है।

कार्तिक प्रसाद खत्री ने मीरा, शिवाजी और अहिल्याबाई के जीवन-चरित्रों का अंकन करके जीवनी-साहित्य के विकास में सहायता दी है।

द्वितीय उत्थान में जीवनियों का चित्रण सत्य और यथार्थ को आधार मानकर किया गया। विश्लेषण और व्याख्या के द्वारा सूक्ष्म तत्त्वों को भी प्रगट करने का प्रयत्न किया गया। इस युग में देशी और विदेशी महापुरुषों के चरित्र मनोवैज्ञानिक ढंग पर चित्रित किए गए। राजाराममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक, महादेव गोविन्द रानाडे, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, हर्ष, चन्द्रगुप्त, तुलसीदास, सूरदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, अब्राहिम लिंकन और बेंजमिन आदि महापुरुषों की जीवनियाँ द्वितीय उत्थान में लिखी गईं।

द्वितीय उत्थान के जीवनी-साहित्य के रचयिताओं में बनारसीदास चतुर्वेदी, सत्यनारायण कविरत्न और सत्यदेव विद्यालंकार आदि का नाम उल्लेखनीय है।

तृतीय उत्थान में जीवनी-साहित्य के निर्माण में रामवृक्ष शर्मा वेनीपुरी, डा० रामविलास शर्मा, गुलाबराय, वियोगी हरि और मोहन लाल महतो 'वियोगी' आदि ने अधिक योग दिया है।

आत्म-कथाएँ लिखने की परिपाटी पश्चिम से चलकर हमारे देश में आई है। हिन्दी में आत्म-कथाओं के रूप में जो साहित्य है, वह अधिकांश अनूदित है। इस दृष्टि से गाँधी जी की आत्मकथा और जवाहरलाल नेहरू की 'मेरी कहानी' का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मौलिक आत्म-कथाओं की सृष्टि हुई है। श्री श्यामसुन्दरदास जी की 'मेरी आत्म कहानी', गुलाबराय की 'मेरी असफलताएँ', हरिभाऊ उपाध्याय की 'साधना के पथ पर', वियोगी हरि का 'मेरा जोवन प्रवाह' राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी जीवन यात्रा' और सेठ गोविन्ददास जी की 'आत्म निरीक्षण' आदि श्रेष्ठ आत्म-कथात्मक कृतियाँ हैं।

श्रद्धानंद जी की 'कल्याण मार्ग का पथिक' नामक कृति हिन्दी की प्रथम आत्म-कथात्मक रचना है।

संस्मरण वैयक्तिक सम्पर्क के आधार पर लिखा जाता है। इसमें रोचक घटनाओं और स्थितियों का चित्रण, नपे-तुले शब्दों में होता है। संस्मरण-साहित्य की रचना में पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीराम शर्मा, रामवृक्ष वेनीपुरी, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रामनाथ सुमन, राहुल सांकृत्यायन, शिवपूजन सहाय, श्रीमती महादेवी वर्मा, और भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने अधिक योग दिया है।

रेखा-चित्र जीवन-साहित्य का कलात्मक स्वरूप है। श्रीमती महादेवी वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत, भगवतीचरण वर्मा, प्रभाकर माचवे और शिवमंगलसिंह सुमन आदि ने उत्कृष्ट रेखा चित्र प्रस्तुत किए हैं।

इसी प्रकार इंटरव्यू, पत्र और डायरी, लघुकथा, बाल साहित्य, प्रौढ़ साहित्य, यात्रात्मक साहित्य और शिकार साहित्य के रूप में भी आधुनिक गद्य का विकास हुआ है।

आधुनिक-काल पद्य

प्रथम-उत्थान—भक्तिकाल का प्रवाह अब पूर्णरूप से मन्द पड़ चुका था। रीतिकाल की शृंगारिक कविता की साँसें भी अब उखड़-सी रही थीं; इसका कारण था युग और स्थिति का प्रभाव। अब समाज में नर्म चेतना जाग उठी थी। सामाजिक और राजनीतिक प्रेरणाओं ने ऐसी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न कर दी थीं, जिससे लोगों का ध्यान देश और समाज-सुधार की ओर आकृष्ट हुआ। विदेशी शासन के अत्याचारों के कारण लोगों के मन में देश और समाज के लिए पीड़ा भी जाग उठी।

साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। पद्य के क्षेत्र में कवियों का ध्यान शृंगार की ओर से हट गया। लोग देश और समाज-सुधार संबंधी रचनाएँ करने लगे।

अभी तक पद्य की भाषा ब्रज थी। पर गद्य के विकास ने खड़ी बोली को प्रोत्साहन प्रदान किया, तो पद्य की रचना भी खड़ी बोली में की जाने लगी। पद्य-रचना के क्षेत्र में खड़ी बोली का सर्वप्रथम उपयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया है। अतः लोग उन्हीं को खड़ी बोली के काव्य का जन्मदाता भी मानते हैं।

प्रथम-उत्थान की रचनाएँ दो प्रकार की हैं—(१) प्राचीन परंपरा की रचनाएँ, और (२) नर्म धारा की रचनाएँ। प्राचीन परंपरा की रचनाएँ ब्रज-भाषा में हैं। उनकी शैली, उनके छन्द और उनके विषय भी रीतिकालीन कवियों के समान ही हैं।

नर्म-धारा के कवियों की भाषा खड़ी बोली है। उन्होंने नए छन्दों में अपने भावों का गुम्फन किया है। उनकी रचनाओं के विषय देश और समाज-सुधार से संबंधित हैं। उनका ध्यान चमत्कार की ओर नहीं, बल्कि यथार्थ-जीवन की ओर है।

प्रथम-उत्थान में प्राचीन परंपरा का पृष्ठ-पोषरण जिन कवियों ने किया है, उनमें महाराज रघुराज सिंह, सरदार, ललित किशोरी, राजा लक्ष्मरणसिंह और नवनीत चौबे का नाम उल्लेखनीय है। नई धारा को अग्रसर करने में प्रतापनारायरण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, और बद्री नारायरण चौधरी इत्यादि ने अधिक योग दिया है।

प्रथम उत्थान के कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जन्म संवत् १९०७ में हुआ था। गद्य की भाँति ही पद्य के क्षेत्र में भी उनके द्वारा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। पद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का सर्वप्रथम प्रयोग इन्हीं के द्वारा हुआ है। देश और समाज की पीड़ा का चित्र भी इन्हीं के द्वारा चित्रित हुआ है। यद्यपि इन्होंने ब्रजभाषा में भक्ति और शृंगार के भी चित्र खींचे हैं, पर यह तो सत्य ही है कि पद्य के नए स्वरूप का गठन उन्हीं के द्वारा हुआ है।

प्रताप नारायरण मिश्र, ठाकुर जगमोहनसिंह, बद्रीनारायरण चौधरी और अम्बिकादत्त व्यास आदि ने भारतेन्दु जी के मार्ग पर चल कर नई और पुरानी दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं।

संक्षिप्त परिचय

१. पद्य के क्षेत्र में नए विषयों ने प्रवेश किया। उन नए विषयों का संबंध देश और समाज-सुधार से था।
२. राष्ट्र और समाज की कुरीतियों की ओर भी कवियों का ध्यान आकृष्ट हुआ।
३. भक्ति और शृंगार से संबंधित रचनाएँ भी हुईं।
४. प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप में नहीं, बल्कि आलंबन के रूप में किया जाने लगा।

५. यथार्थवाद के चित्रण की ओर लोगों की प्रवृत्ति हुई।
६. अंगरेजी सभ्यता पर व्यंग्य किया जाने लगा।
७. अतीत के गौरवपूर्ण इतिहास की ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ।
८. खड़ी बोली की प्रतिष्ठा हुई, और पद्य में उसका उपयोग किया जाने लगा ; पर ब्रजभाषा में भी रचनाएँ होती रहीं।
९. कवित्त, सवैया और दोहा के अतिरिक्त लावनी छन्द का भी प्रयोग किया जाने लगा।

द्वितीय उत्थान सामाजिक और राष्ट्रीय आंदोलनों का युग था। एक ओर आर्य समाज आदि संस्थाएँ समाज की रगों में जीवन का संचार कर रही थीं, तो दूसरी ओर काँग्रेस द्वारा संचालित आंदोलनों से देश के कोने कोने में उत्साह जाग उठा था। अँगरेजी शिक्षा के व्यापक प्रचार से वैज्ञानिक भावनाएँ उमड़ पड़ी थीं। बड़े-बड़े विचारक, नेता और राष्ट्रप्रेमी सामने आ चुके थे, और अपने नए-नए विचारों से समाज को आंदोलित कर रहे थे। प्राचीन रूढ़ियों और रीतियों-नीतियों की दीवालें ढह रही थीं। अँगरेजी साहित्य के माध्यम से वैयक्तिक स्वतन्त्रता की भावना जन-जन में व्याप्त होने लगी थी। एक ओर देश की स्वतंत्रता के लिए लोग प्रयत्न-शील थे, तो दूसरी ओर मानवी अधिकारों को लेकर श्रमिकों, और किसानों में भी असंतोष की लहर दौड़ पड़ी थी।

द्वितीय-उत्थान की नई कविता इसी सामाजिक, राष्ट्रीय और शैक्षिक क्रान्तियों का प्रतिबिंब है। द्वितीय-उत्थान के काव्य-साहित्य को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी से अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उन्होंने खड़ी बोली को शुद्ध, व्यापक, और परिमार्जित करने के साथ-ही-साथ खड़ी बोली के कवियों को अधिक प्रोत्साहित किया। इस कार्य में 'सरस्वती' से अधिक सहायता प्राप्त हुई। द्विवेदी जी ने लंबे अर्से तक 'सरस्वती' में कविताओं को प्रकाशित किया, जिनकी भाषा खड़ी

बोली थी, और जो भारतीय संस्कृति, देश-प्रेम, राष्ट्रीयता और हिन्दु-सभ्यता आदि पर आधारित थीं।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध महाकवि मैथिलीशरण गुप्त का आविर्भाव इसी काल में हुआ। गुप्त जी की काव्य-कला के विकास में आचार्य द्विवेदी जी का बहुत बड़ा हाथ है। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, पं० रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शंकर शर्मा, श्रीधर पाठक आदि इसी काल के कवि हैं।

द्वितीय-उत्थान में जगन्नाथदास रत्नाकर, और सत्य नारायण कविरत्न ने व्रज भाषा में काव्य रचना करके अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

द्वितीय-उत्थान के कवि—श्रीधर पाठक—पहले ब्रज-भाषा में कविता करते थे। किन्तु जब खड़ी बोली का प्रचार हुआ, तो वे खड़ी बोली में रचना करने लगे। उन्होंने 'एकान्तवासी योगी', 'श्रान्त पथिक', 'ऊजड़ गाँव', और 'काश्मीर सुषमा' इत्यादि पुस्तकों की रचना करके खड़ी बोली के काव्य के विकास में सहायता पहुँचाई है।

उनकी निम्नांकित पंक्तियों में खड़ी बोली का ही एक चित्र है—

आज रात इससे परदेशी चल कीजे विश्राम यहीं।
जो कुछ वस्तु कुटी में मेरे करो ग्रहण संकोच नहीं।
तृण शैया और स्वल्प रसोई पाओ स्वल्प प्रसाद।
पैर पसार चलो निद्रा लो मेरा आशीर्वाद॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी ने 'प्रिय प्रवास', 'वैदेही वन-वास' और 'रसकलश' आदि काव्य-ग्रथों की रचना की है। उनकी रचनाएँ दो प्रकार की हैं—संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली में, और मुहा-वरा उर्दू-मिश्रित सरल हिन्दी में। 'प्रियप्रवास' संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली में है। 'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे', और 'बोल चाल' में बामुहावरा उर्दू मिश्रित सरल हिन्दी व्यवहृत की गई है।

ं॰ **मैथिलीशरण गुप्त** का जन्म संवत् १९४३ में हुआ। गुप्त जी द्वितीय-उत्थान के प्रतिनिधि कवि हैं। खड़ी बोली के काव्य के विकास में उनकी रचनाओं ने अधिक योग प्रदान किया है। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता, वीरता, सांस्कृतिकता, मानवता, और उदारता सजीव हो उठी है। उन्होंने युग की सभी प्रवृत्तियों का चित्रण अपनी रचनाओं में किया है।

भारत-भारती, झंकार चन्द्रहास, तिलोत्तमा, शकुन्तला, नहुष, सैरन्ध्री, जयद्रथ वध, वकसंहार, वन वैभव, द्वापर, जय भारत, पंच-वटी, साकेत, प्रदक्षिणा, अनघ, यशोधरा, कुणाल, रंग में भंग, गुरु-कुल, तेगबहादुर, सिद्धराज, किसान, हिन्दू, विश्व वेदना, अर्जन और विसर्जन, और काबा और कर्बला इत्यादि काव्य-ग्रंथों की उन्होंने रचना की है।

'साकेत' उनका सुप्रसिद्ध प्रबध-काव्य है।

पंडित नाथूरामशंकर शर्मा, पं० रामनरेश त्रिपाठी और गोपालशरण सिह आदि भी द्वितीय-उत्थान के सुप्रसिद्ध कवि हैं। **जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'** ने द्वितीय-उत्थान में ब्रज-भाषा में 'उद्धव-शतक' और 'गंगावतरण' की रचना करके अपनी काव्य-प्रौढ़ता का परिचय दिया है।

संक्षिप्त परिचय

१. खड़ी बोली का पूर्ण रूप से विकास हुआ। उसमें ब्रज-भाषा की-सी सरसता पैदा की गई।
२. संस्कृत के छन्दों का प्रचार हुआ। नए-नए छन्द भी प्रचलित हुए।
३. उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक रचनाएँ लिखी गईं।
४. देश-गौरव और देश-प्रेम को मुख्य रूप से कविता में स्थान दिया गया। अतीत की गौरवपूर्ण गाथाओं का भी गान हुआ।
५. सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर भी कविताएँ लिखी गईं।
६. आदर्शवाद की स्थापना की गई।

तृतीय-उत्थान—अंगरेजी शिक्षा का पूर्ण रूप से प्रचार हो चुका था। अंगरेजी साहित्य के साथ-ही-साथ फ्रेंच आदि भाषाओं के साहित्य का भी अनुशीलन हो रहा था, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' प्रकाशित हो चुकी थी। अंग्रेजी के कीट्स और शैली आदि कवियों की रचनाएँ लोगों को अनुप्राणित कर रही थीं।

जीवन के क्षेत्र में लोग संकीर्णता की सीमा से बाहर निकल रहे थे। गाँधी जी ने अपने साहित्य के द्वारा लोगों का ध्यान मानवता की ओर आकृष्ट किया। हिंदू, मुसलमान और ईसाई आपस में एकत्त्व का अनुभव करने लगे। यद्यपि बीच-बीच में उनके एकत्त्व की जंजीर टूट जाती थी, पर उस ज्योति का प्रभाव मन्द न हुआ, जो गाँधी जी के द्वारा जलाई गई थी।

खड़ी बोली के काव्य पर, अखंड रूप से इन सम्पूर्ण बातों का प्रभाव पड़ा, फलस्वरूप उसमें नई-नई प्रवृत्तियों का जन्म हुआ।

इन्हीं दिनों हिंदी-काव्य-जगत् में श्रीजयशंकर प्रसाद का आविर्भाव हुआ। प्रसाद जी ने उपदेश, देशप्रेम, और समाज की सीमित सीमा से दूर हटकर, मानवी भावनाओं के आधार पर काव्य का सृजन किया। उन्होंने नवीन कल्पनाओं, उपमाओं, शैलियों, और भाषा की सृष्टि की। उनके कथन की विचित्रता को देखकर लोग उनकी कविताओं को छायावाद के नाम से अभिहित करने लगे।

'छायावाद' के अतिरिक्त तृतीय-उत्थान में और भी कई प्रवृत्तियों ने जन्म लिया है। तृतीय उत्थान की सम्पूर्ण प्रवृत्तियों को ठीक-ठीक समझने के लिए इस काल की रचनाएँ निम्नांकित वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं छायावादी रचनाएँ, प्रगतिवादी रचनाएँ, प्रयोगवादी रचनाएँ।

छायावादी रचनाएँ छायावाद पर आधारित हैं। 'छायावाद' क्या है—इस सम्बन्ध में लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। आचार्य शुक्लजी के मतानुसार छायावाद एक विशेष शैली है। डाक्टर नगेन्द्र

छायावाद को स्थूल के एक अति सूक्ष्म विद्रोह के रूप में मानते हैं। कुछ लोग छायावाद उस कविता को मानते हैं, जिसमें प्रतीकों के माध्यम से बात कही जाती है। कुछ लोग छायावाद वहाँ मानते हैं, जहाँ प्रकृति में आत्मा या परमात्मा की छाया प्रतिबिंबित होती है।

जयशंकर प्रसाद छायावादी रचनाओं के जन्मदाता हैं। उनका जन्म सवत् १६४६ में हुआ था। उनमें बहुमुखी प्रतिभा थी। उन्होंने काव्य, कहानी, नाटक और उपन्यास सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा के महत्त्वपूर्ण चित्र बनाए हैं।

प्रसाद जी ने 'कानन कुसुम,' 'महाराणा का महत्त्व,' 'करुणालय,' 'प्रेम पथिक,' 'आँसू,' 'झरना,' 'लहर' और 'कामायनी' इत्यादि काव्य-ग्रंथों की रचना की है। 'आँसू' में कोमल भावनाओं का विकास हुआ है। 'कामायनी' प्रबंध-काव्य है, जिसमें मानव-संस्कृति की झाँकी प्रस्तुत की गई है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म संवत् १६५३ में हुआ। काव्य, कहानी, उपन्यास और निबंध आदि सभी क्षेत्रों में उनकी प्रतिभा ने अपना चमत्कार प्रगट किया है।

परिमल, अनामिका, गीतिका, तुलसीदास, अणिमा, बेला और नए पत्ते निराला जी की कविताओं के संग्रह हैं।

निराला जी की रचनाओं मे नए-नए विषयों, उपमाओं, कल्पनाओं, और शैलियों तथा भाषा का अपूर्व स्वरूप देखने को मिलता है। उनकी कविताएँ मुक्त-छंद हैं। उन्होंने अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। दार्शनिकता, और संगीतमयता उनकी रचनाओं की विशेषता है।

सुमित्रानन्दन पंत का जन्म संवत् १६५७ में अलमोड़े जिले के कौसानी नामक ग्राम में हुआ। पंत जी छायावादी कवियों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनकी रचनाएँ संस्कृत, अंगरेजी और बंगला-साहित्य की रचनाओं से प्रभावित हैं।

उच्छ्वास, पल्लव, वीणा, ग्रंथि, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि और युग-पथ आदि पंत जी की रचनाओं के संग्रह हैं।

पंत जी ने अपनी रचनाओं में प्रकृति, दर्शन, और यथार्थ-चित्र अंकित किए हैं। उनकी रचनाओं में सुकुमार भावनाओं का सामंजस्य है।

श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म संवत् १९६५ में फर्रुखाबाद में हुआ। इनकी रचनाओं में वैयक्तिक दुःख और वेदना ने विराटता का रूप धारण किया है। करुणा और वेदना की अनुभूति का चित्रण इनकी कविताओं में सबसे अधिक हुआ है।

नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्य गीत और दीपशिखा श्रीमती वर्मा की कविताओं के संग्रह हैं। 'यामा' में प्रथम चार पुस्तकों की ही रचनाएँ संकलित हैं।

छायावादी रचनाओं के युग में कुछ और प्रवृत्तियों ने भी जन्म लिया है। इन प्रवृत्तियों को हम राष्ट्रीय, हालावादी और मांसलवादी प्रवृत्तियों की संज्ञा दे सकते हैं।

राष्ट्रीय प्रवृत्ति—छायावादी कवियों ने प्रकृति, सौन्दर्य, आत्मा और भारतीय दर्शन को आधार मानकर अपनी रचनाओं का अभिसार किया है। छन्द, भाषा और शैली के क्षेत्र में उन्होंने उन सम्पूर्ण नियमों पर आघात किया है, जो अब तक काव्य के क्षेत्र में बरते जा रहे थे। भाषा को सरल और मधुर बनाने के लिए उन्होंने व्याकरण के नियमों की भी अवहेलना की। इसी उद्देश्य से उन्होंने नए-नए शब्दों की भी सृष्टि की। अर्थ और भावों के सौन्दर्य के साथ-ही-साथ उन्होंने ध्वनि-सौंदर्य को भा महत्त्व दिया।

छायावादी-युग की मुक्त विशेषताओं का प्रभाव उन सभी कवियों पर भी है, जिन्होंने दूसरी प्रवृत्तियों को आधार मानकर रचनाएँ की हैं। 'राष्ट्रीय प्रवृत्ति' के कवियों की रचनाओं में यद्यपि राष्ट्रीय

भावना मुखरित हुई है, पर यह नहीं कहा जा सकता, कि वे छायावादी प्रभाव से मुक्त हैं।

छायावादी युग में राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को आधार मानकर काव्य रचना करने वालों में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारीसिंह दिनकर और सोहनलाल द्विवेदी का नाम उल्लेखनीय है।

मोहनलाल महतो वियोगी, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, सियाराम शरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, गुरुभक्तसिंह भक्त, श्यामनारायण पाण्डेय और हरिवंश राय 'बच्चन' आदि छायावादी युग के ही कवि हैं।

संक्षिप्त परिचय

१. निराशा और दुःख को ही कल्पना का आधार बनाया गया है। निराशा और दुःख की भी अभिव्यक्ति सीमा से बाहर निकलकर की गई है।
२. साधारण-से-साधारण मनुष्य के जीवन में भी सौन्दर्य की स्थापना की गई है।
३. व्यक्तिवाद को प्रधानता दी गई है।
४. हृदय की सूक्ष्म भावनाओं को ही अभिव्यंजना का आधार माना गया है।
५. प्रकृति और मानव-जीवन में सामंजस्य स्थापित किया गया है।
६. आध्यात्मिक भावनाओं के चित्रण को प्रधानता दी गई है।
७. सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति विद्रोह प्रदर्शित किया गया है।
८. स्वदेश-प्रेम में बलिदान, सौंदर्य और गौरव को महत्त्व दिया गया है।
९. अतुकांत और मुक्त-छन्दों की सृष्टि की गई।
१०. नए-नए अलंकारों का भी प्रयोग किया गया।

प्रगतिवादी रचनाएँ प्रगतिवाद पर आधारित हैं। प्रगतिवाद रूसी साम्यवादी विचार-धारा से प्रभावित है। अर्थस्वातंत्र्य और व्यक्तिगत अधिकार ही इन रचनाओं की पृष्ठ-भूमि हैं। विद्रोह और संघर्ष के द्वारा भौतिकवाद का पृष्ठ-पोषण प्रगतिवादी रचनाओं में मुख्य रूप से मिलता है।

सुमित्रानन्दन पंत, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, शिव मंगलसिंह सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, और नागार्जुन आदि मुख्य प्रगतिवादी कवि हैं।

संक्षिप्त परिचय

१. वर्गहीन समाज की रचना के लिए किसानों और मज़दूरों को विद्रोही बनाने का प्रयत्न किया गया है।
२. निम्न-वर्ग की समस्याओं का चित्रण किया गया है।
३. उच्च-वर्ग के प्रति घृणा उत्पन्न की गई है।
४. आदर्श का बहिष्कार और यथार्थ का चित्रण किया गया है।
५. समाज की प्राचीन मान्यताओं के प्रति तीव्र विरोध प्रगट किया गया है।
६. भाषा को सरलता के साँचे में ढाला गया है।
७. छन्दों में स्वतंत्रता बरती गई है।

प्रयोगवादी रचनाएँ प्रयोगवाद पर आधारित हैं। प्रयोगवाद पूर्ण रूप से 'बुद्धिवाद' पर प्रतिष्ठित है। पर यह 'बुद्धिवाद' अस्पष्ट और उलझा हुआ है। 'प्रयोगवाद' के जन्मदाता अज्ञेय जी स्वयं इस बुद्धिवाद को अभी तक स्पष्ट नहीं कर सके हैं। फिर भी प्रयोगवादी रचनाएँ हो रही हैं। प्रयोगवादी रचनाओं में नारी और प्रकृति-सौंदर्य के प्रति तीव्र आकर्षण के साथ-ही-साथ मानव के प्रति उलझी हुई अस्पष्ट संवेदनाएँ भी मिलती हैं।

अज्ञेय, धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर, भवानीप्रसाद मिश्र, और नरेश कुमार मेहता आदि प्रयोगवादी कवि हैं।

संक्षिप्त परिचय

१. बुद्धि पर आधारित है।
२. अटपटे प्रतीकों और उपमानों को प्रधानता दी गई है।
३. छन्द बेतुके हैं।
४. भाषा में खिचड़ीपन है।
५. मनुष्य की क्षण-क्षण पर बदलने वाली मनोदशाओं को ही रचना का आधार माना गया है।
६. निजी भावनाओं को महत्त्व दिया गया है।